RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 अंक : 09 कुल पृष्ठ : 36 4 सितम्बर, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 सितम्बर, 2018

वर्ष : 55 अंक-09

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय – सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ आर्य, समाज और हिन्दू धर्म	✍ स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज	06
❍ क्षत्रिय परम्परा	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	12
❍ असतो मा सद्गमय	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	16
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	19
❍ प्रेरक कथानक	✍ संकलित	21
❍ वीर बालक जेरापुर-नरेश	✍ श्री सज्जनसिंह	25
❍ विचार-सरिता (पञ्चत्रिंशत लहरी)	✍ श्री विचारक	26
❍ अपनी बात	✍	29

समाचार संक्षेप

पू. नारायणसिंहजी की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के तृतीय संघप्रमुख पू. नारायणसिंहजी रेड़ा की जयन्ती उनके जन्मदिवस 30 जुलाई को संघ की शाखाओं में उत्साहपूर्वक मनाई गई। 1969 से 1989 तक आप श्री क्षत्रिय युवक संघ के संघप्रमुख रहे। दस वर्ष तक पू. तनसिंहजी के सामने और दस वर्ष तक उनके बाद आपने यह दायित्व निभाया। फरवरी 1963 से लेकर जून 1975 तक आपने संघशक्ति के सम्पादक का भी दायित्व निभाया।

आपका जन्म 30 जुलाई सन् 1940, तदनुसार श्रावण कृष्णा-11 सं. 1997 को हुआ। गाँव में रहने वाले एक साधारण निम्न मध्यम वर्ग वाले राजपूत परिवार में आपने जन्म लिया। पिता श्री हरीसिंहजी एक साधारण ग्रामीण राजपूत। चुरू जिले की सुजानगढ़ तहसील का एक मरुस्थलीय गाँव रेड़ा, उनका जन्म स्थान था। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में लेने के बाद आप बीकानेर में शिक्षा हेतु भेजे गए। वहीं 1950 में मात्र 10 वर्ष की आयु में आपने संघ का प्राथमिक प्रशिक्षण शिविर किया, संघ के सम्पर्क में आए।

संघ की लगन ऐसी लगी कि साधारण परिस्थितियों में जन्म होने के बावजूद असाधारण लक्ष्य की राह पर कदम बढ चले। दसवीं कक्षा उत्तीर्ण कर आप अध्यापक बन गए। लेकिन जहाँ पदस्थापित हुए, वहाँ संघ का वातावरण नहीं मिल रहा था अत: हर शनिवार-रविवार तथा अवकाश के दिन बीकानेर ही चले आते और वहाँ की शाखा के सांघिक वातावरण में स्वयं तो रम ही जाते अपने साथी स्वयंसेवकों को भी रमा लेते।

एक-दो दिन के इस स्नेहिल वातावरण से ही वे संतुष्ट होने वाले नहीं थे। सन् 1959 में हल्दीघाटी में संघ का उच्च प्रशिक्षण शिविर हुआ जिसमें वे सम्मिलित हुए। संघमय वातावरण में ही डूबे रहने की उनकी तड़फ ने निर्णय लिया कि मैं तो अब पू. तनसिंहजी के साथ ही रहूंगा। पू. तनसिंहजी ने समझाने का प्रयास किया कि सरकारी नौकरी छोड़कर तुम मेरे साथ रहना चाहते हो, पर तुम्हें क्या दे पाऊँगा; घर में तुम पिता के सबसे बड़े पुत्र हो, उनके प्रति दायित्व को कैसे निभाओगे, तुम्हारा विवाह हो चुका है, अपनी पत्नी के प्रति जिम्मेदारी कैसे निभा पाओगे। पर इन सब बातों को अलग रखकर उनका एक ही अनुरोध बना रहा,-मुझे भी रख लो। मात्र 19 वर्ष की अवस्था में यह निर्णय ले लिया कि मेरा तो कल्याण पू. तनसिंहजी के साथ रहने में ही है। यह एक असाधारण निर्णय ही था।

पू. तनसिंहजी के साथ जो रहता, उसको वे निखारते। अन्तर की सफाई अनेक प्रकार के कष्ट लेकर आती है, लेकिन अविचलित रहकर उन्होंने सभी कुछ सहा और उत्तरोतर निर्मल बनते रहे। संघ के आदर्श स्वयंसेवक का रूप निखर कर आया। उनका आज्ञा पालन, उनका सेवाभाव, अटूट लगन, निरंतर कर्मठ सक्रियता, उनकी तत्परता, उनकी सजगता अद्‌भुत प्रेरणादायी थी। शिविरों में वे आदर्श घटप्रमुख के रूप में उभर कर आए। उनके घट में जो रहने का अवसर पाता, उसकी संघ के प्रति प्रगाढता स्पष्ट नजर आती।

कई बार वर्ष-वर्ष तक घर नहीं जाते। 4-4 माह तक लगातार भ्रमण या शिविरों में आगे से आगे चलते रहते। घर-परिवार के लोगों को उनकी अनुपस्थिति इसलिए नहीं खटकती थी कि उनका व्यवहार प्रत्येक के प्रति आदर्श था। संघ को सदैव घर से प्राथमिकता दी, उसकी भी परिवार को कोई शिकायत नहीं थी।

वे वाणिज्य विषय के विद्यार्थी नहीं रहे थे, परन्तु लेखा-जोखा रखने में ऐसे माहिर थे कि लेखा विशेषज्ञ भी देखकर आश्चर्य करते थे। व्यापारिक दुकानों की व्यवस्था, संघ के शिविरों में कार्यक्रमों की व्यवस्था, प्रत्येक दिन के निर्धारित प्रवचन के अनुकूल पूरे शिक्षण की व्यवस्था आदि में आपका कोई सानी नहीं।

आपकी इन प्रत्येक असाधारणताओं के अतिरिक्त

(शेष पृष्ठ 30 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(संघशक्ति प्रांगण जयपुर में आयोजित विशेष शिविर में दिनांक 19.9.2007 को प्रात:कालीन सत्र में संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर के उद्बोधन का संक्षेप)

संघ जितना हमारे बारे में गंभीर है, हमारे बारे में सोचता है, उसका दशमांश भी हम स्वयं हमारे बारे में सोचना शुरू करें, स्वयं चिंतित हो जाएँ तो हमारी यात्रा संघ की ओर प्रारम्भ हो जाएगी। यह चिंतन का प्रतिशत जितना बढता जाएगा, उतना ही हम संघ के साथ भली प्रकार कदम मिलाकर चल सकेंगे। जितना संघ हमारे हित के बारे में सोचता है, उतना हम भी संघ के हित के बारे में सोचना प्रारम्भ कर दें तब भी परस्पर तालमेल बैठ जाएगा। ऐसा यदि हम नहीं कर सके तो तालमेल नहीं बैठ पाएगा और हम तथा संघ अलग-अलग ही रह जाएंगे।

सेवा प्रेम भाव से भी की जा सकती है और सेवा कर्तव्य भाव से भी की जा सकती है। प्रेम भाव से सेवा करने में तरलता है, रस है पर कर्तव्य तो खुश्क है, रूखा है। प्रेम भाव और कर्तव्य भाव में भक्ति और ज्ञान का सा अन्तर है। भक्ति तो तरल है पर ज्ञान खुश्क है। कर्तव्य भाव से सेवा करने वाला सावधान होकर, सजग रहकर सेवा करता है जबकि प्रेम भाव में सेवा मगन होकर की जाती है। सावधानी खुश्क होती है पर मगनता तरल होती है। प्रेम भाव जाग्रत हो जावे तो फिर सेवा में बुद्धि लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। पू. तनसिंहजी ने अपनी डायरी में 22 कारण लिखे कि कोई मुझसे प्रेम क्यों करता है। फिर एक-एक करके सभी कारणों को हटाते गए कि कोई किसी कारण से प्रेम करता है, तो यह प्रेम सशर्त हो गया। सशर्त प्रेम तो सौदेबाजी हो सकती है, विशुद्ध प्रेम नहीं। प्रेम प्रेरणा देता है। साधारणतया प्रेरणा का स्रोत बाहरी होता है परन्तु जब स्वप्रेरणा जागेगी तब ही काम बनेगा।

व्याकुलता व आकुलता पनपे तब प्रेम जाग्रत होता है। तुलसीदास जी की जीवन-गाथा हम जानते हैं। कर्तव्य भाव व वासना लिए पत्नी के पास गए थे। लेकिन वहाँ जो दिशा मिली उससे आकुलता जग गई। कर्तव्य भाव से प्रेम भाव पर चले जाएँ तो आकुलता आएगी ही। बुद्ध ने संसार की मरणधर्मा स्थिति देखी तो व्याकुलता जग गई। व्याकुलता जाग्रत हो जाए तो फिर राजपाट भी अच्छा नहीं लगता। इसीलिए राजपाट छोड़ चले। ऐसी ही नारद की व्याकुलता थी। व्याकुलता के बिना विसर्जन की स्थिति नहीं आती। हमारे अन्दर न बोध है, न ज्ञान है न प्रेम है, फिर भी हम संघ में आते हैं। आते रहे निरन्तर तो आना व्यर्थ नहीं जाएगा। अत: निश्चिन्त हो जाएँ। परन्तु जितना अधिक कार्य करेंगे तो कल्याण की ओर बढेंगे। अत: अपनी गति तीव्र करें। संघ का कहा मानना जितना अधिक करेंगे, उतनी ही गति बढेगी। आज संघ का पूरा अनुसरण नहीं हो पा रहा है, पर आते रहे तो हो जाएगा। आप आते रहो और बचना चाहो तो भी बच नहीं सकते। संघ में आने वाला कभी घाटे में नहीं रहेगा। जितना हमने संघ कार्य किया है, उसका फल अवश्य मिलेगा। संघ का मार्ग बहुत ही उच्च श्रेणी का मार्ग है। उस मार्ग पर हम बढ रहे हैं।

जिस दिन प्रभु से प्रेम करने का कारण खो जाए और प्रेम जग जाए, तो प्रभु मिल जाएंगे। परन्तु तब तक जो करते रहे हैं, वह करते रहें। कर्तव्य के मार्ग पर हम बढ रहे हैं। इस बढने को, संघ कार्य करने को और अधिक ढंग से करने का प्रयास करें। यह भाव जाग्रत हो जाए कि संघ में कोई अन्य व्यक्ति काम करे या न करे, मैं तो करता रहूँगा, यह आवश्यकता है। संघ कार्य करते हुए अपना आत्मदर्शन भी करते रहें। दूसरों के दोषों की तरफ नजर न जाए, उनके गुणों को ही देखें। परमपिता परमेश्वर ही हमारा गुरु है, परन्तु जिससे जो कर्तव्य मार्ग पर बढने की, ईश्वर के मार्ग पर बढने की सीख मिल

(शेष पृष्ठ 20 पर)

आर्य, सनातन और हिन्दू धर्म

(धर्म-परिवर्तन होता ही नहीं)

- स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

श्री परमहंस आश्रम परिवार, शक्तेषगढ़, मिर्जापुर, उत्तरप्रदेश में दिनांक 4 अप्रैल, 2011, सोमवार के प्रात:कालीन सतसंग में एक श्रद्धालु ने प्रश्न किया- ''महाराज जी! आये दिन हिन्दुओं के धर्म-परितर्वन के समाचार सुनने को मिलते हैं। कृपया बतायें इस समस्या का समाधान क्या है?''

पूज्य महाराजश्री ने बताया कि आश्रमीय साहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकरण का उल्लेख है। परमपूज्य गुरुदेव श्री परमहंस जी महाराज के समक्ष भी ऐसा ही एक प्रश्न आया था कि 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। यह नामकरण तो अरब आक्रामकों द्वारा सिन्धु नदी के तटवर्ती निवासियों के लिये प्रयुक्त एक घृणात्मक सम्बोधन था, जो धीरे-धीरे यहाँ के निवासियों की पहचान के रूप में प्रचलन में आ गया तो हिन्दू-धर्म सनातन-धर्म कैसे है?

उस समय गुरु महाराज ने उन्हें बताया था-''नहीं हो! यह नाम अरब आक्रमणकारियों की देन नहीं बल्कि उनसे भी प्राचीन है; क्योंकि भारत के सुदूर वनप्रान्तों, आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) इत्यादि क्षेत्रों, जहाँ इस्लाम का प्रचार-प्रसार और प्रशासन व्यवस्था नहीं थी, वहाँ भी पूर्ण श्रद्धा से स्वीकृत है।'' (देखें-'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति', पृष्ठ-405, संस्करण-सन् 2006)

यह सच है कि धार्मिक आधार पर गठित संगठन भी इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि हिन्दू किसे कहते हैं? उनका मानना है कि इस प्रश्न की निर्विवाद व्याख्या आज तक नहीं हुई और न होनी ही उत्तम है; क्योंकि यदि कहें कि वर्णाश्रम व्यवस्था मानने वाला हिन्दू है तो हिन्दुओं में बहुत से ऐसे हैं जो वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति और छुआछूत नहीं मानते। यदि कहा जाये 'जो वेद-शास्त्रों को माने वही हिन्दू' तो बौद्ध, जैन इत्यादि वेदों को प्रमाण नहीं मानते। यदि कहें 'जो अवतार माने वही हिन्दू' तो हिन्दुओं में ही बहुत से पन्थ अवतारों में श्रद्धा नहीं रखते। यदि यह कहा जाये कि 'चोटी, धोती या यज्ञोपवीत धारण करने वाला हिन्दू है', तब भी बहुत से प्रान्तों में ऐसा नहीं करते और अपने को हिन्दू कहते हैं। शवदाह करने वालों को हिन्दू कहें तो बहुत से हिन्दू जल-प्रवाह करते या समाधि बनाते देखे जाते हैं। यदि भारत के निवासियों को हिन्दू कहा जाए तो विदेशों में रहनेवाले इससे वंचित रह जायेंगे। वास्तव में हिन्दू एक संस्कृति है, जिसमें हर तरह की उपासना की स्वतंत्रता और सहनशीलता है। अच्छा तो यह होगा कि जो कोई अपने को हिन्दू कहता है, हिन्दू है। किन्तु ये सब भ्रान्तियाँ हैं। कहना न होगा कि इसी तरह हिन्दू धर्म के बारे में कोई ज्ञान उन्हें भी नहीं है जो वरिष्ठ पदों पर रह चुके हैं। कुछ वर्ष पहले ईसाइयों के धर्मगुरु भारत पधारे। उनके स्वागत में समूचा तंत्र उमड़ पड़ा। वापसी में वायुयान में बैठते समय उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री से पूछ लिया-यह हिन्दू क्या होता है? उन्हें उत्तर मिला-हिन्दू एक विचार है! विचार तो क्षण-क्षण पर बदलते ही रहते हैं। क्या इतना ही अस्थिर है हिन्दू-धर्म?

वस्तुत: प्राचीन भारत में शुंगकाल से भारत की मूलभाषा संस्कृत, धर्मशास्त्र गीता और गौरवपूर्ण इतिहास-ग्रन्थ महाभारत के पठन-पाठन पर कड़े प्रतिबन्ध लग जाने के कारण इन भ्रान्तियों ने जन्म लिया कि हिन्दू शब्द कहाँ से आया, आर्य कहाँ से आये और हिन्दू-धर्म सनातन कैसे?

पहले पूरे भारत में बोलचाल की भाषा संस्कृत थी; किन्तु दो हजार वर्ष से गीता के एक श्लोकांश ***'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं'*** को लेकर तत्कालीन व्यवस्थाकारों ने प्रचारित किया कि चार वर्णो की संरचना भगवान ने स्वयं की और इस प्रकार समाज में घृणा और फूट की दीवार खड़ी कर दी। कदाचित् गीता पढ़कर कोई समझ न

जाय कि भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्यों को नहीं बल्कि चिंतन-कर्म को चार भागों में बांटा। अत: उन्होंने व्यवस्था दी कि गीता घर में रखो ही मत; नहीं तो लड़का सन्यासी हो जाएगा। गीता महाभारत का एक अंश है, इसलिए उन्होंने कहा-महाभारत मत पढ़ना, नहीं तो घर में महाभारत जैसा विनाश हो जाएगा। महाभारत पूर्वजों की गौरवगाथा है। वह शौर्य को जगाता है। यदि शौर्य जग जाएगा तो शोषित वर्ग हमला कर सकता है, इसलिए उनसे शस्त्र छीन लिया गया कि शस्त्र केवल क्षत्रिय उठा सकता है। अपनी वस्तु की रक्षा में ब्राह्मण भी उठा सकता है; किन्तु वैश्य और शूद्र शस्त्र नहीं रख सकते। शिक्षा, शास्त्र, और इतिहास पर प्रतिबन्ध लग जाने से भारत अँगूठा छाप हो गया, समाज बिखर गया और इसी व्यवस्था को लोगों ने सनातन-धर्म कहकर चला दिया, स्व-धर्म कहकर चला दिया और अब भारत भूल गया कि वह हिन्दू क्यों है! जबकि-

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।। (गीता, 13/14)

ऋषियों ने इस गीताशास्त्र का विधिवत् चिंतन करके इस रहस्य को स्पष्ट किया और गीता से ही धर्म के तीन आदर्श नाम आर्य, सनातन और हिन्दू दिये, जिससे मनुष्य चाहकर भी न भटक सके।

गीता के आरम्भ में ही भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।। (गीता, 2/2)

अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व वरिष्ठ महापुरुषों ने भूलकर इसका आचरण ही किया। *'अनार्यजुष्टम्'*-यह अनार्यों का आचरण तुमने कहाँ से सीखा? गीता आर्य-संहिता है, जिसमें है कि सिवाय आत्मा के किसी का अस्तित्व नहीं है। जो उस परमात्मा के प्रति निष्ठावान है 'आर्य' है। उस आत्मा को विदित करने की विधि (गीतोक्त-विधि-योग-विधि) यज्ञ को जो आचरण में ढालता है वह आर्यव्रती है और उसके परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त है, दर्शन, स्पर्श और आत्मस्थिति पा जाता है वह आर्यत्व प्राप्त है।

सनातन-धर्म-गीता का प्रारम्भ ही सनातन-धर्म से होता है। दोनों ही सेनाओं में अपने परिजनों को देखकर अर्जुन ने कहा-गोविन्द! इन्हें मारकर मैं कैसे सुखी होऊँगा। ऐसा युद्ध करने से सनातन-धर्म नष्ट हो जाएगा। भगवान ने पूछा-क्या सनातन धर्म? अर्जुन ने बताया- *'कुलधर्माः सनातना', 'जातिधर्माश्चशाश्वताः'*, पिण्डोदक क्रिया लोप हो जायेगी, पितर गिर जायेंगे, कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा होगा, जो कुल और कुलघातियों को नरक में ले जाने के लिये ही होता है। जिसे अर्जुन धर्म-धर्म कहता रहा, भगवान ने कहा-अरे! तुझे यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया। अर्जुन का जो प्रश्न था, आज का भारत उसी को उत्तर मान कर चल रहा है; जातिधर्म, कुलधर्म, पिण्डोदक क्रिया ही तो कर रहा है। रात-दिन और क्या कर रहा है? स्व-स्व धर्म का पालन करो-जाति-परम्परा में जिसको जो मिला है उसी का पालन ही तो कर रहा है। अर्जुन तो सीख गया पीछे वाली पीढ़ी आज भी जहाँ की तहाँ खड़ी है।

अर्जुन ने सविनय कहा-प्रभो! आप ही बताइये कि सत्य क्या है? भगवान ने कहा-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।
(गीता, 2/16)

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत् का अस्तित्व नहीं है, उसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। क्या है वह सत्य और असत्य? इस पर भगवान ने बताया कि अर्जुन! आत्मा ही सत्य है और भूतादिकों के शरीर नाशवान हैं। शरीरों के ही उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच को आज लोग धर्म मान बैठे हैं। अर्जुन! आत्मा ही सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।
(गीता, 2/24)

आत्मा अच्छेद्य है, इसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि इसे जला नहीं सकती, वायु सूखा नहीं सकता, जल इसे गीला नहीं कर सकता। यह सदा रहने वाला एकरस और सनातन है। सनातन केवल आत्मा है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर-ये पर्यायवाची शब्द हैं। यह अन्त:करण में सदा विद्यमान होने से आत्मा सबमें रहते हुए सबसे परे है इसलिए परमात्मा, स्वर के निरोध काल में विदित होने से ईश्वर-ऐसे हजारों नाम हो सकते हैं। यह तो प्रार्थना है, चरित्र-चिंतन है। इस आत्मा के प्रति जो श्रद्धावान है वही सनातनधर्मी है। यदि हम आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं, उस परमतत्व परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं हैं तो हम भटके हुए हैं, धार्मिक नहीं।

ईश्वर का निवास-स्थल-मान लिया उस आत्मा का ही अस्तित्व है, वही सनातन है। वह सनातन ज्योतिर्मय प्रभु रहता कहाँ है? भगवान बताते हैं-

ज्योतिषामपि तज्जयोतिस्तमस: परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।

(गीता, 13/17)

वह ज्योतियों का भी ज्योति है, अंधकार से अत्यन्त परे वह पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण ज्ञाता है, जानने योग्य है, 'ज्ञानगम्यं'-ज्ञान के द्वारा सबके लिये सुलभ और ***'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'***-वह सनातन आत्मा हृदय में रहता है। जिन्हें हमें प्राप्त करना है उनका निवास बैकुण्ठ में नहीं, आकाश में नहीं, हृदय में है। हिन्दू शब्द भगवान के स्थान का वाचक है। उस हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहे जाते हैं। हृदय में बैठकर भगवान करते क्या हैं? इस पर कहते हैं-

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।

(गीता, 15/15)

सबके हृदय में समाविष्ट मुझसे ही बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता होती है। यह साधारण बुद्धि नहीं बल्कि वह बुद्धि जो भगवान को धारण कर ले। 'ज्ञान' दर्शन के साथ मिलने वाली अनुभूति है। विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता हृदय में बैठकर ईश्वर प्रदान करते हैं। इसी हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से आप हिन्दू हैं।

गीता के समापन पर भगवान अपनी ओर से पुन: स्पष्ट करते हैं-अर्जुन! जानते हो ईश्वर का निवास कहाँ है?

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठिति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(गीता, 18/61)

अर्जुन! वह ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। इतना समीप कि हमारे हृदय में है तो हम उसे देखते क्यों नहीं? भगवान बताते हैं कि मायारूपी यंत्र में आरूढ़ होकर लोग भ्रमवश भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देखते। जब ईश्वर हृदय में ही है तो हम शरण किसकी जाएँ? भगवान अगले श्लोक में ही आदेश देते हैं -

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

(गीता, 18/62)

अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ, 'सर्वभावेन'-संपर्णू भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि थोड़ा भाव संकटमोचन में, कुछ पशुपतिनाथ में, कुछ देवी में... तब तो हम भटक गये। मन-क्रम-वचन से भलीभाँति समर्पित होकर जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यताओं से चित्त समेटा और हृदयस्थ ईश्वर की शरण में चले ही गये तो उससे लाभ क्या है? भगवान कहते हैं-अर्जुन! ***'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्'***- तुम उसके कृपाप्रसाद से परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे और 'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'-उस निवास स्थान को पा जाओगे तो शाश्वत है, एकरस है, सनातन है, अपरिवर्तनशील है, जो सदैव रहेगा। उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाने वाला ही हिन्दू है। हिन्दू शब्द ईश्वर के निवास का परिचय देता है।

हिन्दुत्व की साधना हृदय में ईश्वर की जागृति के साथ आरम्भ होती है। ज्यों-ज्यों संयम सधता जाता है, उसी स्तर के अनुरूप हृदय में ईश्वरीय निर्देश मिलता जाता है। यह पढ़ाई भगवान स्वयं पढ़ाते हैं। हर व्यक्ति

के अपने अनन्त संस्कार हैं। सबकी अलग-अलग मनोदशा और अलग-अलग अनन्त वृत्तियाँ हैं। उन वृत्तियों के अनुरूप साधक को भगवान की ओर से प्रतिदिन, प्रतिपल निर्देश मिलते रहते हैं। सबके निर्देशों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये, साधक को कैसे रहना है?, कब भोजन करना है?, किसका भोजन करना है?, किसका नहीं करना है?, क्या खाना है और क्या नहीं?, क्या पहनना है, कहाँ उठना-बैठना-चलना है?, कब सोना, कब जागना है?, कब भजन करना है, कैसे करना है? बैठकर या चलित ध्यान?..... इत्यादि प्रत्येक गतिविधि भगवान स्वयं नियन्त्रित करने लगते हैं। कभी जिस वस्तु का प्रयोग मना था, बाद में उसी को करना पड़ सकता है। भगवान की इन आज्ञाओं का पालन ही भजन है। हर व्यक्ति की साधना का स्तर अलग-अलग होता है। किसी को इन्द्रियों का संयम करना है, किसी को युक्ताहार विहार की आवश्यकता है, किसी को चिंतन में समय देना है तो कोई सेवा स्तर पर है। सबके लिये एक जैसी साधना नहीं हो सकती इसलिए वह साधना लिखने में नहीं आती। यही कारण है कि प्राचीन महापुरुषों ने आर्ष ग्रन्थों में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है। हिन्दू नामकरण साधना का क्रियात्मक पक्ष है। यह प्रत्यक्ष दर्शन है, क्रियाजन्य है जो किसी अनुभवी सद्गुरु के संरक्षण में चलकर ही पूरा होता है।

सृष्टि में जो भी उस ईश्वर को ढूंढ़ेगा, हृदय में ही पाएगा। इसलिये मानवमात्र जो भी हृदयस्थ ईश्वर का आराधक है, सब हिन्दू हैं। अन्यत्र ढूँढ़ने पर भी ईश्वर नहीं मिलेगा। संसार का भटका हुआ मानव भटकाव से ऊपर उठकर जब भी ईश्वर की ओर उन्मुख होता है, हृदयस्थ ईश्वर की ही शरण जाता है इसलिए वह सभी हिन्दू हैं। उनका रहन-सहन, वेशभूषा, पर्व-उत्सव तो गुरुघरानों की पहचान हैं। सृष्टि का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के प्रशस्त पथ पर आते ही हिन्दू हो जाता है-भले ही वह अपने को कुछ भी कहता या मानता रहे। जब तक वह शरण में नहीं आता, मोह-निशा में आक्रान्त है और ज्यों ही वह हृदयस्थ ईश्वर की शरण आता है, वह हिन्दू है। यह नाम अन्य किसी की देन नहीं, आदिशास्त्र गीता की ही निष्पत्ति है।

हिन्दू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'ही' हिय अर्थात् हृदय और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा! चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश ज्योतिर्मय ईश्वर की उपस्थिति का द्योतक है। हिन्दू शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि भगवान आपके हृदय में विद्यमान हैं। नास्तिक, जो भगवान को नहीं चाहता, उसके हृदय में भी भगवान भली प्रकार हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (गीता, 2/69)

इस जगतरूपी रात्रि में सभी प्राणी निश्चेष्ठ पड़े हुए हैं, इसमें संयमी पुरुष जग जाते हैं। गीतोक्त साधना समझकर जहाँ किसी ने अभ्यास किया, संयम सधा, तहाँ वह जीव तत्काल जग जाता है। ऐसी मोह-निशा में भी भगवान क्षीण प्रकाश के रूप में हर व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। रात्रि में तो चन्द्रमा ही प्रकाश करता है। संयम और चिंतन पार लगते ही रात्रि का अवसान हो जाता है, ईश्वरीय प्रकाश फैलने लगता है। रात्रि गयी तो चन्द्रमा का कोई उपयोग नहीं रहता। ईश्वरीय क्षीण प्रकाश पूर्ण प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है।

श्री भगवान कहते हैं- ***'न तद्भासते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।'*** - वहाँ न चन्द्रमा प्रकाश कर सकता है, न सूर्य और न अग्नि ही; इसलिए ईश्वरीय प्रकाश जहाँ फैला तो रात्रि का अवसान हो गया, साधक हृदयस्थ ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। अस्तु, इन्दु जो क्षीण प्रकाश है, ज्योतिर्मय परमात्मा के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

हिन्दू धर्म परमात्मा के निवास स्थान का परिचायक शब्द है और गीता शास्त्रसम्मत है। इसी प्रकार आर्य न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। अस्तित्व के प्रति निष्ठावान हुए तो आर्य, और जब तक नहीं है तब तक अनार्य! परमात्मा ही सनातन है। सनातन के प्रति श्रद्धावान सनातनधर्मी है।

समाज में जो देवी-देवता पूजा चल रही है, परमात्म-पथ की शुरुआत यहीं से होती है। यह शिशु को

वर्णमाला ज्ञान सिखाने जैसा है कि 'क' से कमल या 'ए' फार एप्पल! शिक्षा की कुछ दूरी सम्पन्न होते ही यह पाठ समाप्त हो जाता है। गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर इसी ने पहुँचाया है। अचेत आत्मा को जगाने के लिये, परमात्मा का रहस्य प्रकट करने के लिये रासलीला, रामलीला, कथा, कीर्तन, नृत्य, गायन चित्रकथा की तरह धर्म की खुली पुस्तक है। भगवान से श्रद्धा जोड़ने, अचेत आत्माओं को जगाने के लिये है। यह सभी 'भजन' के ही अन्तर्गत है।

मंदिर, मस्जिद, चर्च और प्रार्थना-स्थलियाँ अध्यात्म की आरम्भिक पाठशालायें हैं। वस्तु-पूजा, प्रतीक-पूजा, पुस्तक या लाकेट-पूजा, दीवाल या चबूतरा पूजन मूर्तिपूजा के ही विभिन्न रूप हैं। अधिकांश मंदिर, मूर्तियाँ पूर्वजों और महापुरुषों के स्मृति-स्थल ही तो हैं। बालक पहले इन स्थलियों पर सिर झुकाना सीखता है, तो कभी वृक्ष पूजन अपनाता है; वृक्ष स्वयं में एक मन्दिर है, जिसमें ईंट-पत्थर जोड़ने की भी आवश्यकता नहीं रहती। माता-पिता और गुरुओं से आरम्भिक पाठ पढ़कर व्यस्क होते-होते वह महात्माओं के संसर्ग में आता है। क्रमश: परिपक्व होने पर उनसे प्रश्न-परिप्रश्न कर वह एक परमात्मा की शरण में जाते ही गीतोक्त साधन-पथ पर आ जाता है और हृदयस्थ परमात्मा की शोध में संलग्न हो जाता है।

रामचरित मानस भी आदिशास्त्र गीता का ही अनुवाद है-

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।।
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर।।

(मानस, 7/48/1-4)

जप, तप, नियम, योग, तीर्थों का अवगाहन-ये सब श्रुतिसम्मत धर्म है। पुस्तक पढ़ना आदि का फल केवल एक उन प्रभु के चरण-कमलों में प्रीति है। हृदयस्थ ईश्वर तक पहुँचने के ये सब आरम्भिक साधन हैं। मन्दिर, मस्जिद इत्यादि माध्यमों को गोस्वामी तुलसीदास इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।

(मानस, 7/125/4-7)

उपर्युक्त सभी साधन वेदवर्णित हैं। जब अपना प्रकाश देने की स्थिति में आते हैं तो एक हरि की भक्ति प्रदान करते हैं।

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई।।

(मानस, 7/119/18)

फिर वह गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर आ जाता है, वह हृदयस्थ ईश्वर का पुजारी हो जाता है, हिन्दू है।

सृष्टि के आरम्भ में सबका आदिशास्त्र गीता थी। वह अविनाशी योग विस्मृत हो चला तो द्वापर में भगवान द्वारा यह गीता पुनर्प्रकाश में आयी। इसके अर्थ को लेकर भ्रान्तियाँ पनपने लगीं तो इसका यथावत भाष्य 'यथार्थ गीता' प्रकाश में आयी, जिसे 4-6 बार पढ़ लेने पर न कोई सन्देह है, न होगा। यही हृदयस्थ ईश्वर की साधना है।

सृष्टि में मानवमात्र का एक ही धर्म है- हृदयस्थ परमात्मा को विदित करना! उसकी निर्धारित विधि भी एक ही है-गीतोक्त नियत विधि! उसकी विशेपता बताते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

(गीता, 2/40)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है, सीमित फलरूपी दोष नहीं है और इसका स्वल्प अभ्यास भी महान जन्म-मृत्यु के बन्धन से उद्धार करने वाला होता है। आप इस कर्म-पथ पर दो कदम चल भर दें तो अगले जन्म में तीसरा ही कदम आगे बढ़ेगा और पड़ेगा। जैसे कोई बीज पृथ्वी पर डाला, वह अंकुरित हो गया, दो पत्ती फूट गयी तो वह फूलेगा, फलेगा और मिलेगा। माया में कोई क्षमता नहीं कि उसे नष्ट कर दे तो साधारण मनुष्य धर्म में परिवर्तन कैसे कर लेगा?

गीता के अध्याय 6 में भगवान कहते हैं-अर्जुन! वायुरहित स्थान में दीपक की लौ सीधे ऊपर की ओर जाती है, उसमें कम्पन नहीं होता। योगी के अच्छी प्रकार जीते हुए चित्त की यही परिभाषा है। उसकी वृत्ति शान्त स्थिर तैलधारावत् बाँस की तरह खड़ी हो जाती है। वृत्ति श्वास में समाहित हो जाती है। श्वास आयी तो ओम् गयी तो ओम्! बीच में कोई दूसरा संकल्प न आया, न टकराया। अर्जुन थोड़ा चौंका। वह बोला-प्रभो! इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलने वाला समझता हूँ। इसका रुकना तो लगभग असम्भव है। अत: शिथिल प्रयत्न वाला श्रद्धावान पुरुष आपको न प्राप्त होकर किस दुर्गति को प्राप्त होता है? कहीं छिन्न-छिन्न बादल की तरह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? छोटी-सी बदली आकाश में आयी, न बरस पायी न बादलों से ही मिल पायी और देखते ही देखते हवा के झोंकों से नष्टप्राय हो गयी, विलुप्त हो गयी। इसी प्रकार वह पुरुष भी बेचारा न संसार में भोग-भोग पाया न आपको ही प्राप्त कर सका। कहीं वह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता?

भगवान ने बताया -

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

(गीता, 6/35)

अर्जुन! नि:संदेह यह मन वायु से भी तेज चलने वाला और निरोध करने में दुष्कर है, किन्तु साधना समझकर अभ्यास और देखी-सुनी वस्तुओं में लगाव का त्याग अर्थात् वैराग्य के द्वारा यह भली प्रकार स्थिर हो जाता है। इस गीतोक्त कर्म को करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस साधन के प्रभाव से वह पुण्यवानों के लोक में अथवा पवित्र योगीकुल में जन्म लेता है। वहाँ विषयों में आकण्ठ डूबा होने पर भी पिछले जन्म के बुद्धि संयोग को अनायास ही प्राप्त कर लेता है, उसी साधना को आगे बढ़ाता है और ***'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्'***। (गीता, 6/45)-अनेक जन्मों के साधन के परिणाम में वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परमगति, परमधाम है। कागभुशुण्डि कई जन्मों के बाद पहुँच गये। वह कौवा हो गये लेकिन धर्म कभी नहीं बदला! जड़भरत मृग हो गये लेकिन धर्म नहीं बदला। भगवान महावीर कभी शेर हुए, हाथी हुए; अन्त में लक्ष्य पर पहुँच गये, धर्म नहीं बदला। धर्म कभी नहीं बदलता। धर्म को लोग जानते ही नहीं इसलिए उन्हें लगता है कि धर्म-परिवर्तन हो गया। परिवर्तन रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रथाओं का होता है। धर्माचरण आरम्भ भर हो गया तो माया भी अवरोध नहीं डाल सकती, तो यह क्षुद्र मनुष्य रहन-सहन बदलकर धर्म-परितर्वन कैसे कर सकता है? यह एक भ्रान्ति है और धर्मशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है।

गीता में भगवान आश्वासन देते हैं-***'अपि चेत्सुदुराचारो'*** (9/30)- अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है तो वह साधु मानने योग्य है। अनन्य माने अन्य न! किसी भी अन्य देवी-देवता को न भजते जो निरंतर मुझे भजता है वह साधु मानने योग्य है। कौन? वही दुराचारी! क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। यथार्थ जो सत्य है, तत्त्व है; उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया, उसका भटकाव समाप्त हो गया है। इतना ही नहीं -

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगक्ष्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति।।

(गीता, 9/31)

वह दुराचारी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक ध्रुवसत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। गीतोक्त साधन ऐसा जीवन बीमा जैसा है जिसके अनुसार थोड़ा भी साधन आपको जन्म-मृत्यु के बन्धन से पार लगा देता है। तीन-चार बार गीताभाष्य 'यथार्थ गीता' पढ़ लिया, कुछ अभ्यास शुरू कर दिया, बीजारोपण हो गया तो विनाश कभी नहीं होगा। ये साधारण लोग 'मेरा धर्म', 'तेरा धर्म' करके क्या परिवर्तन करेंगे? माया का पूरा प्रकोप हो तब ही वह नष्ट नहीं होगा। इसलिए सद्गुरु की शरण होकर गीतोक्त साधना आरम्भ करें, सबको गीता प्रदान करें, धर्मान्तरण का प्रश्न सदा-सदा के लिये सुलझ जायेगा।

क्षत्रिय परम्परा

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

क्षत्रिय परम्परा क्या है? स्वधर्म पालन ही क्षत्रिय परम्परा है। क्षत्रिय का स्वधर्म क्या है? क्षात्रधर्म का पालन करना ही क्षत्रिय का स्वधर्म है। हर व्यक्ति में तीन प्रकार की वृतियाँ होती हैं-सत, रज और तम। सतोगुण है सत्य की ओर उन्मुख, प्रकाश की ओर उन्मुख, न्याय की ओर उन्मुख, ज्ञान की ओर उन्मुख वृत्ति। तामसिक वृति, तमोगुण की ओर उन्मुख वृति, असत्य, अंधकार, अन्याय, अज्ञान की ओर उन्मुख रहती है। रजोगुण में इच्छा और क्रिया निहित है। इच्छा और क्रिया सतोगुण के साथ जुड़ती है तभी क्षात्रवृत्ति पनपती है और यदि इच्छा और क्रिया तमोगुण के साथ जुड़ गई तो आसुरी वृति पनपती है। क्षात्र वृति में इच्छा और क्रिया सत्य के साथ है, अर्थात सतोगुणीय कार्य के साथ है, सज्जनता के साथ है। साथ होने के तात्पर्य है यह वृति उनकी रक्षा करे, उनको पनपाए और सज्जनता को संरक्षण देने के लिये आसुरी वृति का नाश करे। तो क्षात्रधर्म हो गया सज्जनता की रक्षा और दुष्टता का नाश। क्षय किसी प्रकार का है उससे त्राण करना अर्थात् रक्षा करना, ऐसे स्वभाव का नाम है क्षत्रिय।

क्षत्रिय का कर्तव्य वही है, क्षात्र धर्म वही है जो भगवान के अवतार का कारण है, अर्थात् ***परित्राणाय साधूनाम, विनाशाय च दुष्कृताम।*** साधु-सज्जन लोगों और भावों की रक्षा तथा दुष्टों तथा दुष्टता का नाश। ज्ञान, न्याय, प्रकाश, नीति, दान, क्षमा, प्रेम इत्यादि सतोगुणीय भावों की रक्षा करना क्षत्रिय परम्परा है। इन भावों की रक्षा तो वही कर सकता है जिसमें स्वयं में ये भाव हों। इसीलिए क्षत्रिय वर्ण के स्वाभाविक गुणों को भगवान कृष्ण ने गीता में स्पष्ट किया है-

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चातुर्य, संघर्ष से मुख न मोड़ना, दान देना और ईश्वरीय भाव (स्वामी की तरह रक्षण, पालन, पोषण) ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

इन गुणों का आचरण करने वाला क्षत्रिय है। क्षत्रिय कुल में जिसका जन्म हो गया वह इन गुणों के आचरण के लिये वचनबद्ध है। ऐसा आचरण करने के लिये जन्म के बाद अलग से प्रतिज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि परमपिता परमेश्वर ने उसके पूर्व जन्मों के कर्मों व संस्कारों के फलस्वरूप ही उसका धर्म-ध्येय निर्धारित कर ही क्षत्रिय कुल में जन्म दिया है। क्षात्रधर्म का पालन करना, क्षत्रिय परम्परा का आचरण करना व्यक्ति (क्षत्रिय) की इच्छा ही नहीं, ईश्वर का आदेश है। परमेश्वर की चाह है, उसकी माँग है।

क्षात्र परम्परा का आचरण अत्यन्त दक्षता व सतर्कता से ही सम्भव है। दुधारी तलवार जैसा कार्य है। सतर्कता न बरती जाए तो स्वयं तलवार चलाने वाला भी धार का शिकार हो सकता है। क्योंकि हर व्यक्ति में सत, रज व तम वृतियाँ रहती हैं; क्षत्रिय सतर्कता पूर्वक अपनी रजवृति को सत के साथ जोड़े रहता है। यदि सतर्कता में कमी आएगी तो इच्छा और क्रिया वाली चपल रजवृति कभी भी तम की तरफ भी झुक सकती है और यदि ऐसा होता है तो क्षात्रवृति न रहकर आसुरी वृति उभर आती है और यह कर्तव्य मार्ग से, स्वधर्म से पतन की स्थिति बन जाती है।

अपने वचन और प्रतिज्ञा का पालन करना क्षत्रिय परम्परा रही है। श्रीराम ने अपने पिता के वचन पालन के लिये चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार किया। यदि श्री रामचन्द्र चाहते तो वनवास को अस्वीकार करके अयोध्या के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो सकते थे क्योंकि सारी अयोध्या, सारी कौसल राज्य की प्रजा श्रीराम को राजा के रूप में चाहती थी। लेकिन ऐसा उन्होंने नहीं चाहा क्योंकि ऐसा करना क्षत्रिय परम्परा नहीं है। पिता के वचन

का सम्मान न करना और उसका पालन न करना क्षत्रिय परम्परा नहीं है। ***रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाय पर वचन न जाइ***- यह है क्षत्रिय परम्परा। इसी से परम्परा का महात्म्य रहा है। ईक्ष्वाकु वंश के सभी राजाओं ने क्षत्रिय परम्परा का पालन करके लोक हृदय में अपना स्थान बनाया, वे आज भी आदर्श हैं।

एक पक्षी का शिकार करने के लिये एक बाज उसका पीछा कर रहा था। उससे बचने के लिये पक्षी राजा शिवि की शरण में आ गिरा। राजा ने पक्षी की रक्षा के लिये बाज को अपना माँस काटकर दे दिया। शरणागत की रक्षा करना, क्षत्रिय परम्परा रही है और राजा शिवि ने उस परम्परा को निभाया। गाय की रक्षा के लिये स्वयं को सिंह के समक्ष समर्पित कर देना, अपने ही पुत्र को माता-पिता द्वारा चीर कर अपने वचन के अनुसार समर्पित कर देना, यह क्षत्रिय परम्परा ने अदर्श स्थापित किए हैं।

कौरवों और पाण्डवों का पारिवारिक झगड़ा इतना बढ़ गया था कि दोनों पक्ष एक-दूसरे को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानने लगे थे। पाण्डव जंगल वास भोग रहे थे और गंधर्वराज ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया। तब युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को दुर्योधन को मुक्त करवाने के लिये भेजा और कहा-वयं पंचाधिकशतम्। हमारा परस्पर जो मनमुटाव है उसका लाभ कोई न उठा सके। उस समय हम सौ और पांच नहीं, एक सौ पाँच हैं। यह है क्षत्रिय परम्परा।

दिल्ली के सुल्तान का एक गुनहगार मृत्यु दण्ड से बचने के लिये रणथंभोर के राजा हमीरदेव की शरण में आ गया। शरणागत की रक्षा क्षत्रिय परम्परा है और उसे निभाने के लिये सुल्तान की सेना से हमीरदेव ने लोहा लिया। शरण में आने वाला विधर्मी था लेकिन शरणागत था अत: परम्परा निभाई।

क्षात्रत्व, स्वाभिमान, स्वाधीनता और स्वधर्म की राह पर चलने वाले स्वामियों के कारण चित्तौड़ दुर्ग का इतिहास में सम्मानीय स्थान रहा है। मेड़ता के जयमल राठौड़ अपने साथियों सहित चित्तौड़ जा रहे थे, जहाँ मुगलों के आक्रमण होते रहते थे। पहाड़, घाटियों और जंगल के रास्ते से गुजरते समय मल्लु लुटेरे और उसके साथियों ने उन्हें घेर लिया। लुटेरों ने उनको अपने गहने और धन समर्पित करने का कहा तो राजपूतों ने अपनी तलवारें म्यान से बाहर खींच ली। जयमलजी शान्त रहे। उनके एक साथी ने पूछा-***अठै क उठै।*** जयमलजी ने कहा 'उठै' और अपने गले का हार व हाथ के कड़े आदि मल्लु की ओर फेंक दिए। सभी ने ऐसा ही किया और फिर चल दिए चित्तौड़ की ओर। मल्लु को आश्चर्य हुआ कि सभी तलवारें खींचकर लड़ने को तैयार थे फिर यह क्या हुआ? उसने जयमलजी का पीछा किया और पूछा कि आप कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं और आपके बीच क्या बात हुई थी। जयमलजी ने कहा कि मैं जयमल राठौड़ हूँ, हम चित्तौड़ जा रहे हैं और मेरे साथी ने पूछा था कि 'अठै' अर्थात् यहीं लड़ लें या वहाँ चित्तौड़ में मुगलों से लड़ने चल रहे हैं, वहाँ लड़ने चलें। मैंने उत्तर दिया था-'उठै' अर्थात् वहाँ मातृभूमि की रक्षा के लिये लड़कर मरेंगे यहाँ धन-दौलत की रक्षा के लिये क्यों लड़ें। मल्लु ने पूरा लूटा माल लौटा दिया और स्वयं भी साथ हो लिया। स्वधर्म पालन के लिये ही जीवन काम आए, यही क्षत्रिय परम्परा है।

सात्विकता से भरपूर कर्मों में क्षत्रिय परम्परा ने हर क्षेत्र में सीमाएँ बाँधी हैं। जरा से सात्विकता से चूके कि क्षात्रत्व से भटकाव निश्चित है। चुनौती, युद्ध का निमंत्रण स्वीकार करना क्षत्रिय परम्परा है, लेकिन वह निमंत्रण धर्म की रक्षा के लिये होना चाहिए, अपने निजी रुचि, अहं स्वार्थ या मान के लिये नहीं। युधिष्ठिर ने जुए का निमंत्रण यह कहकर स्वीकार किया कि मैं क्षत्रिय हूँ, चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता। जुआ खेलना उनका निजी शौक था, बहाना क्षत्रिय परम्परा का लिया। नारी का सम्मान, उसकी मान-मर्यादा की रक्षा करना क्षत्रिय कर्तव्य है लेकिन यहाँ तम की ओर झुकने से उसे दाव पर लगाया जाता है। यह क्षत्रिय परम्परा नहीं है।

भीष्म पितामह ने सत्यवती के पिता के सामने प्रतिज्ञा की थी कि वे स्वयं अविवाहित रहकर सत्यवती के पुत्र को ही हस्तीनापुर के सिंहासन पर बिठायेंगे। जब भीष्म के गुरु परशुराम उनको राजकुमारी अंबा से विवाह करने की आज्ञा देते हैं तो भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहते हैं और विवाह के लिये इन्कार कर देते हैं। यह परम्परा का एक पक्ष। वही गुरु जब उन्हें युद्ध करने को कहते हैं तो भीष्म गुरु आज्ञा का पालन कर क्षत्रिय परम्परा का दूसरा पक्ष भी निभाते हैं। कैसी है यह परम्परा कि एक जगह गुरु की आज्ञा का उल्लंघन उचित है तो दूसरी जगह गुरु आज्ञा में गुरु से युद्ध भी उचित है। एक में अपनी प्रतिज्ञा सात्विक है तो दूसरी में गुरु-आज्ञा सात्विक है। क्षत्रिय परम्परा हमेशा सात्विक होती है, वह सत्य और धर्म का ही पक्ष लेती है।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन अपने पूरे मनोयोग से अपनी शक्ति का उपयोग भीष्म पितामह पर नहीं कर रहा था। भीष्म पाण्डव सेना पर बहुत भारी पड़ रहे थे। भगवान श्रीकृष्ण ने इस युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी पर भीष्म द्वारा पाण्डव सेना का संहार देखकर अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ते हुए रथ का पहिया लेकर भीष्म की ओर दौड़ पड़े। भगवान की भी प्रतिज्ञा तुड़वा देना एक परम्परा है लेकिन वही व्यक्ति धर्म और सात्विकता से अगर भटकता है तो जुए पर रोक नहीं लगवा पाता, कुलवधू के वस्त्राहरण पर चुप रहता है। भगवान कृष्ण ने धर्म की रक्षा के लिये अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी लेकिन भीष्म सिंहासन के प्रति वफादार रहने की अपनी प्रतिज्ञा न तोड़कर अधर्म के साथ खड़े रहे, यह क्षत्रिय परम्परा नहीं।

भीमसेन के पौत्र, घटोत्कच के पुत्र बर्बरिक के पास ऐसी शक्ति थी कि जब तक उसके पास शस्त्र है और वह चेतन अवस्था में है, उसे कोई शक्ति मार नहीं सकती थी। एक दिन वह एक पेड़ के नीचे ध्यान में बैठा था। पास में शस्त्र नहीं और ध्यान में मग्न है, ऐसी स्थिति में शकुनी दुर्योधन को उकसा कर उसका वध करने की कहता है। दुर्योधन ने धनुष-बाण उठाए और उसकी ओर ताना। ठीक उसी समय अंगराज कर्ण वहाँ आता है और दुर्योधन को रोकते हुए कहता है निशस्त्र और अचेत व्यक्ति की हत्या करना या वार करना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। दुर्योधन रुक जाता है और कर्ण का आभार प्रकट करता है कि तुमने मुझे क्षत्रिय परम्परा तोड़ने से बचा लिया। लेकिन सात्विकता से चूके तो क्षत्रिय परम्परा भूल जाते हैं और चक्रव्यूह में दुर्योधन, कर्ण, दुशासन, अश्वस्थामा, शकुनी आदि मिलकर निशस्त्र अभिमन्यु की हत्या कर देते हैं। दूसरी ओर रथ का पहिया भूमि में से बाहर निकालते हुए निशस्त्र कर्ण को भगवान कृष्ण अर्जुन से मरवाते हैं क्योंकि वह अधर्म के साथ खड़ा था। यह क्षत्रिय परम्परा है। इस दुधारी तलवार जैसी परम्परा में दक्षता और सतर्कता के साथ ही क्षत्रिय परम्परा निभाई जा सकती है।

दिल्ली के अन्तिम क्षत्रिय सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी को युद्ध में कई बार पराजित किया और उसके द्वारा क्षमा माँगने पर पृथ्वीराज ने उसको हर बार क्षमा कर दिया। क्षमा करना अच्छा गुण है। गौरी यदि पृथ्वीराज का व्यक्तिगत दुश्मन होता और उसे क्षमा कर दिया जाता तो इससे पृथ्वीराज के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष उजागर होता। लेकिन गौरी तो इस पूरे देश का दुश्मन था, हमारी संस्कृति का दुश्मन था, उसे क्षमा कर देना क्षत्रिय परम्परा नहीं, भयंकर भूल है जिसका परिणाम हमारे राष्ट्र ने भोगा है।

अकबर ने राजपूत सैन्य और राजपूत सेनापतियों की सहायता से राजपूत शिरोमणि, स्वतंत्रता के पुजारी, प्रजापालक, धर्मरक्षक, राष्ट्र के सपूत, हिन्दुवा सूरज मेवाड़ के महाराणा प्रताप को पराधीन करना चाहा। महाराणा ने पच्चीस वर्ष तक कष्ट सहे, जंगल में निवास किया। कई बार दोनों सेनाओं के बीच दो-दो हाथ हुए लेकिन अकबर न राणा को पकड़ सका, न झुका सका। उस समय इने-गिने राजपूत राजाओं को छोड़कर अन्य वीर राजाओं ने जो कुछ किया वह क्षत्रिय परम्परा नहीं थी।

उस समय उनके मन में यह भाव नहीं आया कि हम पाँच और सौ नहीं, एक सौ पाँच हैं। महाराणा ने सब कुछ सहन करते हुए भी क्षत्रिय परम्परा निभाई। अमरसिंह ने अकबर की सेना के खेमे पर आक्रमण कर दुश्मन की बेगमों को कैद कर लिया और ले आए तब उन्हें सुरक्षित उनके खेमे में वापस पहुँचाकर महाराणा ने नारी-सम्मान की क्षत्रिय परम्परा निभाई।

पूर्वजों से विरासत में मिली उस क्षत्रिय परम्परा को निभाने में कुछ सदियों से चूक होती रही है। कारण क्या है? कारण है, हम हमारे क्षत्रियत्व को ही बिसार बैठे हैं। हम राजपूत हैं पर क्षत्रियत्व से दूर होते जा रहे हैं। यही स्थिति यदि चलती रही तो संसार क्षत्रिय को ही भूल जाएगा और क्षत्रिय शब्द भूतकाल का बनकर इतिहास के पन्नों में ही सिमट जाएगा। हमारे इतिहास को जो तोड़ने-मरोड़ने की वर्तमान में साजिश चल रही है तब वह नए लिखे गये इतिहास के पृष्ठों में भी नहीं मिलेगा। यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। इसमें सत व तम के बीच द्वन्द्व चलता रहता है। संसार का हर जीव सात्विक होकर जीना चाहता है। वह तामसिकता से बचना चाहता है। यह बचाव, यह रक्षा केवल क्षात्रत्व के माध्यम से ही हो सकती है जब रजोगुण सतोगुण के साथ मिलकर चलता है। अत: जब तक सृष्टि है, क्षत्रिय की आवश्यकता सदैव रहेगी। इसका अस्तित्व कभी मिट नहीं सकता। सृष्टि क्षत्रिय विहीन कभी नहीं हो सकती। क्षत्रिय वर्ण की आवश्यकता को संसार किसी अन्य व्यवस्था से पूरा करने का प्रयास करेगा। परन्तु यह निश्चित है कि जब तक सतोगुणीय रजोगुण सक्रिय नहीं होगा, कोई भी व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल पाएगी। यही स्थिति आज सर्वत्र दिखाई देती है।

पूर्वजों के गुण क्षीण हो गए हैं, लेकिन आंशिक रूप से आज भी हमारे अन्दर मौजूद हैं। इसलिए क्षत्रिय के जो स्वाभाविक कर्म हैं, उनके लिये आवश्यक गुणों को, जो आंशिक रूप से आज भी हमारे अन्दर हैं, दृढता प्रदान किए जाने की महती आवश्यकता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ पिछले सात दशक से इसी क्षत्रियत्व को जगाने का प्रयास कर रहा है। आज का वातावरण अत्यन्त विपरीत है इसलिए शीघ्रता से समाज में ये गुण पनप जाएँ, यह संभव नहीं है। परन्तु इनको अपने आचरण में लाना ही होगा। तभी क्षत्रिय परम्परा पूर्ण रूप से प्रकट हो पाएगी। संघ कहता है,-

आँसू बहा न बन्धु मेरी परम्परा शरमाएगी।
कदम बढा धरा तेरे बोझ से झुक जाएगी।
पहचान तेरे रूप को, कल्पना नई करें।।

✲

वह होगा ना नया पाठ, भूला सा फिर से दोहरेगा।

✲

संघमंत्र क्षत्रिय जाति की रग-रग में संचय करने।
युवा हृदय की तड़फन ले हम आज चले जग जय करने।।

✲

संघ ने शंख बजाया भैया, सत्य जयी अब होगा रे।
क्षात्रधर्म की दिव्य प्रभा से, जग उजियारा होगा रे।।

✲

अब हम भी जाग उठे, लो हमने भी आँखें खोली।
युवक संघ खूंखार उठा लो जाति ने करवट बदली।।

'कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के मंत्र को लेकर श्री क्षत्रिय युवक संघ निरंतर उस सात्विक क्षत्रिय परम्परा का क्षत्रिय युवकों को परिचय कराने का, उस क्षत्रिय परम्परा को निभाने के लिये क्षत्रियोचित संस्कारों को उजागर करने का, उनको आचरण में लाने का कार्य करता है। पीढियों बाद ही सही, लेकिन संघ का यह भागीरथ कार्य एक दिन अवश्य साकार होगा। सात्विक क्षत्रिय परम्परा रूपी पुण्य सलिला माँ गंगा का धरती पर अवश्य अवतरण होगा, युवक संघ के युवा भागीरथों ने तपस्या जो आरम्भ की है। जय क्षात्रधर्म।

✲

हम केवल परम्परा का निर्वहन ही न करते रहें, नई श्रेष्ठ परम्परा का निर्माण भी करें। – **श्री चन्द्रप्रभ**

असतो मा सद्गमय

– *स्वामी यतीश्वरानन्द*

मानव और सत्य :

हम सभी को तापत्रय सहन करने पड़ते हैं। ये है- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप, अर्थात् स्वयं से, दूसरे प्राणियों से तथा प्राकृतिक प्रकोपों से उत्पन्न कष्ट। प्राय: ये तीनों एक साथ रहते हैं। लेकिन अधिकांश अवसरों में स्वयं हमारे द्वारा उत्पन्न समस्याएँ हमारे कष्टों के लिये मुख्य रूप से जिम्मेदारी होती है।

जीवन का लक्ष्य क्या है? तापत्रय से निवृत्ति। सभी दु:ख और बन्धनों से बचने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। लेकिन यदि आनन्द और मुक्ति पाने की कोई सम्भावना ही नहीं होती, तो कोई भी दु:ख से छुटकारा पाने के लिये उत्सुक नहीं होता। यह सम्भावना, यह अव्यक्त सम्भावना, जीवन का मूल केन्द्रीय सत्य है। यदि लोगों की यह निश्चित धारणा होती कि बचने का कोई उपाय नहीं है, तो कोई हिलता-डुलता भी नहीं।

हममें से प्रत्येक में अमरत्व, ज्ञान और सुख की स्पृहा है। हम सभी जीना चाहते हैं, और वह भी सचेतन और आनन्दपूर्वक। तात्पर्य यह है कि सत्, चित् और आनन्द हमारी आत्मा का, हमारे वास्तविक स्वरूप का सार है।

और जब हम बाह्यजगत् का विश्लेषण करते हैं, तब भी समस्त दृश्य जगत् के पीछे हम इन्हीं को अवस्थित पाते हैं। जड़-चेतन सभी पदार्थ अस्तित्ववान् हैं। और सभी वस्तुओं में हमारी चेतना को प्रभावित करने की क्षमता है। प्रत्येक वस्तु में एक प्रकार की ज्योति है, जो जड़ और चेतन सब में प्रकाशित होती है। इस विषय में प्रकार का भेद नहीं है केवल मात्रा का भेद है। आन्तर-जगत् की तरह बाह्य-जगत् में भी सत्ता और चेतना का यह सतत् बोध बना रहता है। इस तरह हमारे भीतर ही नहीं, अपितु सभी बाह्य पदार्थों में सत्य की झलक दिखाई देती है। पुन: हमारे चारों ओर दिखाई देने वाले स्थूल पदार्थ, सभी की कुछ न कुछ आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। हम सभी इन्द्रिय विषयों की ओर दौड़ते हैं, जिनसे हम इन्द्रिय-विशेष का सुख पाने की आशा रखते हैं, चाहे वे कैसे ही क्यों न हों। सुख की इच्छा हममें सदा बनी रहती है। इन्द्रिय-विषय मन को इसीलिए आकृष्ट करते हैं कि उनसे हमें सुख प्राप्त होने की आशा बनी रहती है। इसी कारण हम प्रलोभित होते हैं, उस वस्तु की अपनी किसी विशेषता के कारण नहीं। इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक बाह्य-पदार्थ में स्वयं बने रहने की, उसके प्रति हममें चेतना पैदा करने की, तथा हमारे मन को आकृष्ट करने की क्षमता होती है।

लेकिन यदि हम उन पदार्थों का विश्लेषण करें तो पाएंगे, कि अन्तिम विश्लेषण में हम उनके नाम और रूप का ही पता लगा सकते हैं, उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकते। वे जिस सत्ता को अभिव्यक्त कर रहे हैं, वह फिलहाल हमारे लिये अज्ञात है। नाम और रूप हमारा और बाह्य विषयों का सत्य आवृत्त कर देते हैं, लेकिन सभी नाम और रूप उनके पार्श्व में विद्यमान सत्ता के प्रकाश का मन्द रूप में प्रतिबिम्बित करते हैं। हमारे आन्तर-जगत् तथा बाह्य-जगत् के सर्वसामान्य आधार तथा चरम-सत्ता को उपनिषेदों में ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा कहा गया है।

हममें इस सत्ता अथवा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध अथवा एकत्व का एक अचेतन बोध सदा बना रहता है। यह भले ही बहुत अस्पष्ट, बहुत धूमिल हो, लेकिन फिरभी वह रहता अवश्य है। समस्त आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य इस अस्पष्ट आत्मचेतन को सुस्पष्ट करना है। यदि हम सचमुच सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो हमें सर्वप्रथम अपने से ही प्रारम्भ करना चाहिए, और उसका पता लगाना चाहिए, जो हममें तथा हमारे अहंकार के पीछे विद्यमान है।

'मैं' का मौलिक बोध :

जब तक आत्मा का मिथ्या तादात्म्य, व्यक्तित्व का मिथ्या बोध बना रहेगा, तब तक चरम सत्य का साक्षात्कार कभी भी नहीं हो सकता। देह, मन और अहंकार के साथ हमारी आत्मा का तादात्म्य बना हुआ है, और इस तादात्म्य के काल में हमारी चेतना का केन्द्र निरंतर परिवर्तित होता रहता है। व्यावहारिक स्तर पर कार्य करते अथवा जीते हुए भी अपनी चेतना को परमात्मा में बद्धमूल रखा जा सकता है, लेकिन देह और मन के साथ मिथ्या तादात्म्य बने रहने तक यह भी नहीं किया जा सकता। कभी हम देह के साथ तादात्म्य स्थापित कर कह उठते हैं : ''ओह! मुझे चोट लग गई, मुझे बहुत दर्द हो रहा है।'' कभी मन के साथ तादात्म्य होता है और हम कहते हैं; ''ओह, अमुक व्यक्ति ने मेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार किया, मुझे इतनी चिंता हो रही है, मुझे बहुत दु:ख है।'' यह सब मिथ्या तादात्म्य है, लेकिन इस तादात्म्य में जो सामान्य घटक है, वह है, ''मैं, मैं, मैं''– सदा यह ''मैं'' विभिन्न रूपों में उठता रहता है। और जब तक यह ''मैं'' रहेगा, तब तक हम ब्रह्म की एक झलक भी नहीं पा सकेंगे। लेकिन एक बात ध्यान देने की है : मिथ्या तादात्म्य के समय भी हमें ''किसी'' अपरिवर्तनशील वस्तु का बोध बना रहता है और साधक का लक्ष्य यह पता लगाना है कि अपरिवर्तनशील, नित्य, विद्यमान ''वह'' क्या है।

यह ''मैं'' क्या है? ''ज्ञाता को कैसे जानें?'' अनन्त की धारणा के बिना सान्त का चिंतन कभी भी सम्भव नहीं है, चाहे वह धारणा कितनी भी अस्पष्ट क्यों न हो। एक को स्वीकार करने से हम दूसरे को भी स्वीकार कर लेते हैं। हम अनन्त की परिभाषा नहीं कर सकते, विशुद्ध चैतन्य अर्थात् ब्रह्म की धारणा नहीं कर सकते, लेकिन भले ही उसका वर्णन न किया जा सके पर उसका प्रज्ञा की सहायता से साक्षात्कार किया जा सकता है। अपरोक्ष अतिचेतन अनुभूति जैसी एक अवस्था होती है।

''सत्य का साक्षात्कार उसे होता है, जिसे वह वरण करता है, तथा जिसके समक्ष वह प्रकट होता है।'' अद्वैत के दृष्टिकोण से तुम स्वयं अपना ही चयन या वरण करते हो, क्योंकि यह आत्मा या सत्य तुमसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है, और यदि तुम स्वयं को सत्य के ज्ञाता के रूप में चुनो और उसके लिये प्रयत्न करो, तो तुम वही हो जाओगे। अद्वैत की दृष्टि से आध्यात्मिक साक्षात्कार आत्मसाक्षात्कार ही है।

द्वैतपरक दृष्टिकोण के अनुसार ईश्वर वरणकर्ता है। भगवान की कृपा उन पर होती है, जिन्हें वह चुनता है। लेकिन यहाँ भी व्यक्ति की, जीव की समस्या बनी रहती है। भगवत्कृपा उन्हीं पर होती है, जो उसके लिये तत्पर है, जिन्होंने पवित्रता के लिये कठोर साधना की है। अचानक पवित्र जीवन की ओर मुड़ने वाले तथा कथित ''पापियों'' के जीवन में भी उनके ''पाप कर्म'' ही उन्हें उनके निकृष्ट मन की गतिविधि की जानकारी प्रदान करते हैं। उनमें शुद्धि के लिये अचेतन, लेकिन तीव्र, संघर्ष होता रहता है। द्वैतपरक दृष्टिकोण से आध्यात्मिक अनुभूति का अर्थ भगवत्साक्षात्कार है।

अद्वैतमतानुसार आत्मसाक्षात्कार और भगवत्साक्षात्कार एक ही है। द्वैतमत में इन दोनों में अन्तर माना गया है : पहले आत्मसाक्षात्कार होता है, उसके बाद भगवत्साक्षात्कार होता है। लेकिन दोनों पथों में ही अहं –बोध का अतिक्रमण करना और आत्मा को पहचानना आवश्यक है। वास्तविक आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ आत्मा के अन्वेषण के बाद ही होता है। ''साहसी बनो और सत्य का सामना करो।'' निर्मम आत्मविश्लेषण करो। सर्वप्रथम अपनी आत्मा को पहचानकर पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न करो। तुम्हारी आत्मा प्राय: पूरी तरह खो गई है, और उसे पुन: पाने पर ही उच्चतर अनुभूति की बात उठ सकती है। मानव की अपनी आत्मा की खोज से आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है। आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ इस सत्य की स्वीकृति से होता है कि हम न देह हैं, न भावनाओं के समूह, न स्त्री हैं, न

पुरुष, बल्कि विराट् चैतन्य सत्ता के अंग हैं, जो अधिक सत्य है, तथा भौतिक-जगत् से अनन्त गुना अधिक मूल्यवान है। और हमारे समस्त प्रयासों के आधार के रूप में इस सत्य का बोध बना रहना आवश्यक है।

आध्यात्मिक जीवन के मूलभूत नियम :

जीव तथा विराट् के सम्बन्ध को निर्धारित करने वाले दो मौलिक सिद्धान्त हैं। प्रथम सिद्धान्त यह है : ''व्यक्ति जिसे सत्य समझता है, वह उसकी समग्र सत्ता को, उसके विचारों, भावनाओं और इच्छाशक्ति को आकृष्ट करता है।'' यदि यह असत्य जगत् हमें सत्य प्रतीत होगा, तो वह हमारे समग्र मन-प्राण को अपनी ओर खींच लेगा। यदि परमात्मा हमें सत्य प्रतीत होगा, तो हम संसार से विमुख होकर अपना समग्र मन भगवान में लगाएँगे। संसार को सत्य मानने से हम उससे पूर्ण हो जाते हैं। परमात्मा को सत्य मानने से हम एकमात्र परमात्मा से ही परिपूर्ण हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो हमारे लिये यथार्थ है, हम उसी का अपने पूरे मन से अनुसरण करते हैं।

अतएव सत्य के स्वरूप के विषय में जिज्ञासा करना हमारे लिये आवश्यक है। और इस विषय में अनुसंधान करने पर हम एक दूसरे सत्य का आविष्कार करते हैं, जो आध्यात्मिक जीवन का दूसरा मौलिक सिद्धान्त है। और वह है : ''सत्य की हमारी धारणा हमारी अपने प्रति धारणा पर निर्भर करती है।'' बालक के लिये उसकी गुड़ियाएँ सत्य, जीवन्त होती हैं। बड़े होने पर उसकी अपने बारे में धारणा बदलने पर गुड़ियाएँ अपनी सत्यता खो देती है। इसी तरह किशोरावस्था, यौवन तथा वृद्धावस्था में बाह्य-जगत् की मानव की मान्यता में परिवर्तन होता है। हमारे अपने बारे में ज्ञान तथा जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में निकट का सम्बन्ध रहता है। हमारा बाह्य-जगत् का ज्ञान सदा व्यक्तिगत परिवर्तन के बाद ही होता है।

नेत्ररोगग्रस्त राजा की प्रसिद्ध कहानी इस बात का दृष्टान्त है। डाक्टरों ने राजा को सदा हरे रंग की वस्तुओं को देखने की सलाह दी। राजा ने महल, बगीचे आदि सभी स्थानों को हरे रंग से रंगने का आदेश दिया। लेकिन बुद्धिमान मंत्री ने इसके बदले हरे रंग का चश्मा पहनने का सुझाव दिया। तब राजा को सारा संसार हरा दिखने लगा। हमारी अपने प्रति धारणा में परिवर्तन होने पर, स्वयं को आत्मा समझने पर, आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है। स्वयं को आत्मा समझने पर हम परमात्मा की खोज में लग जाते हैं

भौतिक जगत् के आध्यात्मिक जगत् से अधिक सत्य प्रतीत होने के पूर्व ही हमारी चेतना में हमारी देह आत्मा से अधिक सत्य हो गई होती है। सत्य तो यह है कि पहले हमारी चेतना के स्तर में गिरावट आती है, इसके बाद हम स्थूल देह तथा बाह्य जगत् के बारे में अधिक सचेतन होते हैं।

युक्ति का आधार :

वेदान्त में प्रत्यक्ष अनुभूतिप्रमाण, युक्ति का आधार है। यह तार्किक खण्डन-मण्डन या युक्तिवाद मात्र नहीं है। युक्ति सदा अनुभव पर आधारित होती है। युक्ति हमारी आत्मा के अखण्डनीय सत्य से प्रारम्भ होती है। डेकार्टे ने कहा था, ''मैं सोचता हूँ, अत: मैं हूँ।'' हिन्दू इस कथन को उलटकर कहेगा, ''मैं हूँ, अत: मैं सोचता हूँ।'' इस युक्ति को हमारे आस-पास के स्थूल जगत् और आन्तरिक मनोजगत् पर भी लगाया जाता है। तब हम पाते हैं कि आत्मा ही एकमात्र अपरिवर्तनशील सत्ता है, और अन्य सब वस्तुएँ अनित्य हैं। जो परिवर्तनशील है, उसे असत्य होना चाहिए या जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीन अवस्थाओं में नित्य विद्यमान वस्तु से कम सत्य होना ही चाहिए। वेदान्त का साधक इस तरह सत्यासत्य या नित्यानित्य विवेक करता है।

स्पष्ट विश्लेषण करना चाहिए हम अपने विचारों से पृथक् खड़े होकर उनका अवलोकन भी कर सकते हैं। हम मन को देख सकते हैं। अत: मन एक वस्तु है, जिसको कोई अन्य द्रष्टा देख सकता है।

(शेष पृष्ठ 28 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

भूस्वामी संघ के दूसरे आंदोलन के समय पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपनी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में बताया- ''जिस दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि मुझे एक माह में न्यायालय में अपने आपको सुपुर्द कर देना है, उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे गिरफ्तार होना है। सत्याग्रह के तत्कालीन डिक्टेटर श्री कुँवर आयुवानसिंह जी से स्वीकृति लेनी थी, स्वीकृति मुझे तारीख 30.01.56 को प्राप्त हो गई। रात को दांता हाउस में प्रवेश पा गया और सुबह से खुला ही रहने लगा। करीब 12.45 बजे श्री जसवन्तसिंहजी डी.आई.जी. पुलिस (सी.आई.डी.) नागरिक वेश में दांता हाउस में जीप में बैठकर अपने ड्राईवर के साथ आए। उस समय मैं दांता हाउस में भूस्वामी सत्याग्रहियों और कार्यकर्ताओं के समक्ष भाषण दे रहा था। मैंने भाषण बन्द नहीं किया। संक्षेप में उन्हें बताया कि त्याग कभी किसी का व्यर्थ नहीं जाता, सफलता के लिये हमें कार्य नहीं करना चाहिये किन्तु ध्येय निष्ठ होकर जो कार्य करता है, सफलता उसी के पीछे आती है। अंगद ने रावण के दरबार में अपना पैर जमा कर उसे हटाने की चुनौती दी थी। सत्य के लिये बढने की गति में शक्ति अकाट्य होती है इसलिए रावण के दरबार में अंगद के पैर को हटाने की शक्ति किसी में न रही। हमारा सत्याग्रह भी अंगद का पैर है। पुलिस वाले आज जो रावण से बढकर पाशविकता पर उतर आए हैं, कल स्वयं लज्जित व पराजित होंगे।''

पुलिस जब गिरफ्तार करने की फिराक में थी तब तो उन्हें छकाया, उन्हें अपने मन्सूबों में कामयाब नहीं होने दिया। वह लाख प्रयास करने पर भी उन्हें गिरफ्तार नहीं कर पायी, पर अब पूज्य श्री तनसिंहजी स्वयं गिरफ्तार होना चाहते थे, इस पर उन्होंने बताया-भाषण की समाप्ति पर मैंने डी.आई.जी.पी. से गिरफ्तार होने की इच्छा प्रकट की। जीप में मेरा बिस्तर डाल दिया गया। भूस्वामियों ने जीप घेर ली और नारे लगाते हुए आगे-आगे चलने लगे। डी.आई.जी.पी. बोले कि मैं राजपूत हूँ इसलिए जीप के आगे से लोगों को हटाकर जाने के लिये रास्ता दिलवाएँ। मैंने उनकी बात में सच्चाई का अनुभव किया और कार्यकर्ताओं को रास्ता देने के लिये कहा किन्तु मेरे सामने हाँ भरते हुए भी उन्होंने रास्ता नहीं दिया। ......मार्ग न पाकर डी.आई.जी.पी. ने जीप को उल्टा मोड़ा और पीछे के रास्ते से सीकर हाउस के पास होकर बनीपार्क मिर्जा इस्माइल रोड़ होते हुए आई.जी.पी. के दफ्तर पहुँचे। मैं आई.जी.पी. पुलिस से मिला। उन्होंने आन्दोलन के विषय में कहा कि जनमत आपकी ओर नहीं हो सकता। आपने सरकार को नोटिस नहीं दिया। मैंने उन्हें बताया कि नोटिस हमने दे दिया था और समय ही बताएगा कि जनमत किस ओर है? साथ ही मैंने पुलिस की ज्यादतियों के विषय में उनका ध्यान आकृष्ट किया। मैंने उन्हें कहा कि हमें हारने और जीतने दोनों में लाभ है लेकिन मौजूदा रवैये में पुलिस दोनों ही स्थिति में घाटे में ही रहेगी। बातचीत बढाते हुए मैंने इसी बात को स्पष्ट किया कि यदि हम लोग हार जाते हैं तो कांग्रेस के राजस्थान में सदा के लिये पैर उखड़ जायेंगे। हार के बाद लाखों भूस्वामियों के मन में सरकारी दमन के प्रति बदले की भावना पैदा होगी और वह असंतोष धीरे-धीरे कांग्रेस सरकार की जड़ में दीमक का काम करेगी। निकट भविष्य में ही वह जनता का विश्वास खो देगी। राजपूतों को जनता का अंग न मानकर उपेक्षा का अर्थ होगा जनता का विश्वास खोना, यदि भूस्वामी जीत जाते हैं तो लाभ स्पष्ट है ही। आई.जी.पी. ने हंसते हुए गीता का श्लोकांश बोला ''हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्'' और

मैंने-''तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय:'' कहकर पूरा किया। आगे मैंने कहा कि हमारी हार और जीत दोनों ही से आपके विभाग के पाप नहीं धुल सकेंगे और हम समझौते में यह पहली शर्त रखेंगे कि पुलिस अत्याचारों के खिलाफ जाँच की जाय जिसमें आपको परेशानियाँ ही उठानी पड़ेगी। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे सारी बातों की जाँच करेंगे। परबतसर और नागौर केन्द्रों की मैंने उन्हें जो अत्याचारों की सूचना दी उसकी भी उन्होंने जाँच का विश्वास दिलाया।

पुलिस विभाग गिरफ्तारी सम्बन्धी आवश्यक कागज-कार्यवाही पूरी कर जेल में ले जाने से पूर्व पूज्य श्री का फोटो लेना चाहते थे जिसके सम्बन्ध में पूज्य श्री ने बताया-''गुप्तचर विभाग के कई अफसर भी आते और मिलते रहे। मेरा जहाँ तक अनुमान है वे सब मुझे देखकर पहचानना चाहते थे कि भविष्य में कभी मौका पड़े तो मुझे पहचानने में उन्हें दूसरों की मदद न लेनी पड़े। मेरा फोटो उतरवाने के लिये पुलिस विभाग का फोटोग्राफर बुलाया गया किन्तु फोटो के लिये मैंने साफ इनकार कर दिया।''

पुलिस व गुप्तचर विभाग अपने काम की बातें निकलवाने में बड़े माहिर होते हैं। लोगों को फुसलाकर, उनकी तारीफें बधार कर अपने काम की बातें निकलवा लेते हैं। पूज्यश्री तनसिंहजी से भी अपने काम की बातें निकलवाने के लिये उनके जो प्रयास हुए उस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''मुझे एक बन्द जीप में टोंक की ओर लेकर रवाना हुए। साथ में तीन सशस्त्र सिपाही, एक ड्राईवर और एक कुबेरदान नामक गुप्तचर विभाग के कर्मचारी थे, जो मेरे परिचित भी थे और सम्भवत: इसलिये मेरे साथ भेजे गये थे कि बातों ही बातों में वे उनके काम की कोई बात निकाल सकें। इसीलिए रास्ते भर उन्होंने बहुत तारीफें बधारी कि आंदोलन में संगठन तगड़ा है और हमें बहुत कम बातें मालूम होती हैं। डी.आई.जी.पी. (सी.आई.डी.) के दफ्तर में भी यही पाशे मुझ पर फेंके गए और बार-बार तारीफें की जाती रही कि आपके स्वयंसेवक किसी को कुछ भी नहीं बताते। लेकिन मैं पहले से ही सतर्क था और एक भी ऐसी बात प्रगट नहीं की जो उनके काम की हो। श्री कुबेरदान ने कहा कि उन्हें श्री आयुवानसिंहजी का तो पता है और सात फरवरी से पहले उन्हें गिरफ्तार कर लूंगा। मैंने कहा-''मैं तो इस आंदोलन में एक साधारण सिपाही हूँ, वे तो इसके नेता हैं। मैंने ही तुम्हारी छकड़ी गुम कर दी तो वे भला क्या पकड़े जायेंगे?''

पूज्य श्री तनसिंहजी को लेकर जीप टोंक पहुँची। यहाँ के कलेक्टर श्री गोरधनसिंह मिर्धा थे, जो पहले बाड़मेर में रह चुके थे जिन्हें पूज्यश्री जानते थे कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''हमारी जीप जेल के दरवाजे पर पहुँची। थोड़ी देर तक आवश्यक लिखा पढी के बाद पुलिस अधिकारियों ने विदा ली और मैं एक नये पहाड़ पर चढने के लिये छोड़ दिया गया।''

(क्रमश:)

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

सकती है, वहीं से लें। दत्तात्रेय भगवान ने तो इस तरह 24 गुरु बनाए थे। जो साधना की उच्च स्थिति में पहुँचता है, उसे किसी के दोष दिखाई ही नहीं देते। हम लोगों के गुणों को देखना प्रारम्भ करते हैं तो हमें अनुभव होता है कि भगवान हर जगह से प्रेरणा देता है। आपके जीवन को अधिक सुन्दर बनाने के लिये आपको संघ में तपाया जाता है। डाट-डपट दी जाती है। आपको लगा है कि संघ मार्ग अच्छा है तो इसे आप तक ही सीमित मत रखो। आप अच्छे कार्य से जुड़े हो इस स्मृति को लेकर अन्य लोगों को भी जोड़ें। जो पाया है उसे सुरक्षित रखें, जो पाना है उसका प्रयत्न चालू रखें। स्मरण रहे, आप भी कम नहीं हैं और आपका काम भी कम नहीं है।

*

प्रेरक कथानक

– संकलित

घोर जंगल में एक आश्रम था। जिसमें एक महापुरुष के संरक्षण में कई शिष्य साधन-भजन में संलग्न थे। उनमें से एक शिष्य के मन में प्रबल वैराग्य का उदय हुआ और निर्द्वन्द्व विचरण एवं तीर्थ देखने की कामना जागृत हुई। कई दिनों से वह निरंतर गुरुदेव से तीर्थाटन की आज्ञा माँग रहा था कि तीव्र वैराग्य के पालन-हेतु उन्मुक्त विचरण की अनुमति प्रदान कीजिए; किन्तु उन समर्थ महात्माजी ने कहा, ''नहीं बेटा, अभी तुम्हारे अन्दर वह क्षमता नहीं है। अभी तो तुम मेरे संरक्षण में हो, बाहर निकलते ही पता नहीं किस घाट लग जाओ। अत: अभी तो अहर्निश साधना में ही संलग्न रहो। वह समय आने में काफी देर है।'' किन्तु दो-चार दिनों बाद शिष्य पुन: बोला कि, ''महाराज अब तो अत्यन्त प्रबल इच्छा हो रही है।''

उन महात्मा ने किंचित् रोष से कहा-''देखो, माया बड़ी दुर्धर्ष होती है। जाना ही चाहते हो तो जाओ; किन्तु एक बात स्मरण रखना कि, 'गुरु के वचनों में गुंजाइश कलियुग की तिकड़मबाजी'।'' शिष्य ने कहा-'जो आज्ञा' और सहर्ष प्रणाम करके चल पड़ा। जब वह कुछ दूर चला गया तो सोचने लगा कि महाराजजी के कथन का क्या अभिप्राय है? अर्थ समझ में नहीं आ रहा था, अत: वह लौट पड़ा और महाराजजी के चरणों में प्रणाम कर उनके कथन का आशय पूछा, तो महाराजजी ने कहा-जब शिष्य गुरु की आज्ञा में अपने मन से उलटफेर करने लगता है तो वही कलियुग प्रभावशाली हो जाता है और साधक का पतन हो जाता है। शिष्य ने हाथ जोड़कर पूछा कि, महाराज! मेरे लिये क्या आज्ञा है? तो महात्मा ने कहा कि माई-दाई के चक्कर में मत पड़ना। उन्हें दूर से ही प्रणाम कर सदैव उनसे सजग रहना। दूसरी आज्ञा यह है कि कहीं अपना अथवा गुरु महाराजजी का नाम बढ़ाने के चक्कर में आश्रम, धर्मशाला इत्यादि निर्माण-कार्यों में न उलझ जाना। गुरु महाराज का नाम तो तुम्हारी करनी और गुरुत्व की प्राप्ति होने पर ही होगा। तुम्हारे रूप में गुरु ही प्रस्फुटित हो जायँ और तुम भी खो जाओ, वही उपलब्धि का क्षण है। अन्तिम चेतावनी यह है कि सिद्ध मत बनने लगना। यह सिद्धियाँ भी माया ही प्रदान करती है। पहले वह परमतत्त्व परमात्मा सिद्ध हो जाये, उसकी उपलब्धि ही परमसिद्धि है। इसके पश्चात् जो कुछ रास्ते में मिलने वाली सिद्धियाँ हैं, बाधक नहीं रह जातीं। यही कलियुग की तिकड़मबाजी है। इससे सदैव सजग रहना, इससे बचना और जो मेरा उपदेश है उसमें जरा भी फेरबदल न कर लेना, यही आदेश है।

साधक ने बड़ी प्रसन्नता से प्रणाम किया और कहा कि महाराजजी आपकी कृपा से सब ठीक हो जाएगा। और वहाँ से चल पड़ा। गुरु के आदेश उसे अत्यन्त सरल प्रतीत हुए। विचरण करते-करते उसने एक पहाड़ी पर आसन लगा दिया। समाचार फैलते देर न लगी कि एक बड़े सिद्ध महात्मा दिन-रात जागरण करके अपने भजन में संलग्न रहते हैं, युक्तियुक्त तथ्यपूर्ण बातें करते हैं। शनै: शनै: भीड़ बढ़ने लगी। उसी भीड़भाड़ में साधना-पिपासा लेकर एक नवयौवना भी पहुँच गयी। बोली कि, महाराज! हमने बहुत ढूंढ़ा, आज आपके दर्शन से आँखें तृप्त हुईं। कृपया गुरुमंत्र प्रदान करें, जिससे घोर संसार-सागर से मेरा भी उद्धार हो सके।

महात्मा सरलचित होते ही हैं; साधना का क्रम समझाकर विदा कर दिया और बताया कि यहाँ कुटी में रात्रि में किसी के रहने का विधान नहीं है; क्योंकि इससे भजन में बाधा पड़ती है। पहले दिन तो वह चली गई किन्तु दूसरे दिन प्रात: पुन: सेवा में उपस्थित हो गई। सायंकाल महात्मा ने उससे पुन: घर जाने का आग्रह किया, तो उसने कहा कि दो-एक दिन गुरु-चरणों का सामीप्य तो मिले। आश्रम में रहकर, सेवा करके एवं

चरणामृत पान करके जीवन सार्थक तो करने दें। इसी प्रकार की प्रार्थना करते-करते अन्ततोगत्वा एक दिन आश्रम में निवास करने की अनुमति भी उसने प्राप्त कर ही ली।

संग-दोष का प्रभाव होकर ही रहा। धीरे-धीरे दो-चार संतानें भी हो गईं। पहले तो भाविक भक्त उन्हें हृदय से मानते थे; किन्तु जब उनकी स्थिति पतन के गर्त में पहुँच गई, तब उन्हें कोई भी नहीं पूछता था। पहले कोई कमी न थी, अब माँगने पर भी पूर्ति नहीं होती थी। लोगों को तो जो कहना था कहते ही थे, किन्तु वह युवती भी बिगड़ा करे। एक दिन उसने कहा कि जब भिक्षा माँगने चलना ही है तो छोटे बच्चे को गोद में क्यों नहीं ले लेते! उससे चला नहीं जा रहा है। पहले पैदा करते समय इसका ध्यान नहीं था क्या?

अब तो साधु को महान् दु:ख हुआ। वह सोचने लगा कि कहाँ तो हम इतने महान् पुरुष की सेवा कर रहे थे, और आज हमारी यह दशा हो गई है। उन्होंने मना भी किया परन्तु मन की तरंगों ने न माना। महान् दु:ख के उन क्षणों में आकाशवाणी हुई-''गुरु के वचनों में गुंजाइश, कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! बार-बार मना करने पर भी नहीं माने। अब भी सम्भल जाओ।'' साधक साहसी था। उसने तुरन्त लड़कों और स्त्री को छोड़ा और बहुत दूर निकल गया। अज्ञात स्थान पर पहुँचकर सोचने लगा कि सर्वस्व खोकर पुन: गुरुदेव के पास कैसे जाऊँ। अत: पूर्ण तपस्या का अर्जन करके ही उनकी शरण में चलूंगा। ऐसा दृढ़ निश्चय करके नदी के किनारे एक टीले पर आसन जमाकर बैठ गया।

कुछ ही समय में चतुर्दिक ख्याति फैल गई कि महात्मा बड़े अच्छे हैं। विकल की तरह दिन-रात भजन में ही लगे रहते हैं। भाविकों की भीड़ पुन: बढ़ने लगी। अच्छे-अच्छे सत्संगी वृद्ध लोग नियमित आने लगे। एक आसन में और उसी लगन से उन्होंने बारह वर्ष व्यतीत कर दिया। अन्तराल में शक्ति और सम्बल भी प्रतीत होने लगा। भाविकों के चाहने पर भी वहाँ अपने लिये कोई भवन भी बनने नहीं दिया। केवल फूस की झोपड़ी में रहा करते थे।

एक दिन वह साधु नित्यक्रिया के लिये दूर की पहाड़ी पर निकल पड़े। अचानक सामने ही एक चट्टान स्वर्ण के समान चमकती दृष्टिगोचर हुई। महात्मा ने स्पर्श किया और पाया कि वह तो शुद्ध सोना है। शौच से लौटने पर भी आँखों के समक्ष वही चट्टान कौंधने लगी। उन्होंने विचार किया कि जंगल में इस चट्टान का क्या उपयोग है? यदि यहाँ आश्रम, धर्मशाला, पाठशाला बन जाय तो इससे गुरु महाराजजी की ही कीर्ति फैलेगी। हमें तो कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो गुरु महाराजजी के लिये ही यह सब कर रहा हूँ। ऐसा विचार कर बहुत समय से नियमित सत्संग करने वाले वृद्ध भाविकों से उन्होंने अपना मन्तव्य व्यक्त किया कि यहाँ पर एक आश्रम, धर्मशाला, कूप, पाठशाला बन जाय तो देश का ही कल्याण हो जाय। वृद्ध बोल पड़े कि महाराज! आपने ही तो कभी इसकी अनुमति न दी थी, यह तो हम लोगों के लिये परमकल्याण की बात है कि आज आपने आदेश दिया। अस्तु, अब हम सब चन्दा किये लेते हैं और कल से ही निर्माण-कार्य प्रारम्भ हो जाएगा।

महात्माजी ने कहा कि नहीं, चन्दे की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल मिस्त्री, गाँव के सभी लोग एकत्र होकर एक साथ कार्य प्रारम्भ करें, सबको पैसा भगवान देंगे। दूसरे दिन ही कार्य प्रारम्भ हो गया। सैंकड़ों लोग पैमाइश, नींव खोदने में लग गये। शाम को वे महात्मा शौच गये, एक स्वर्णखण्ड उठा लाये और वयोवृद्धों को समर्पित कर कहा कि इसे बेचकर सबका पारिश्रमिक दे देना तथा अन्य कारीगरों को भी आमन्त्रित कर देना। कारीगरों की भीड़ सहस्रों तक पहुँची और वे महात्मा उसी अनुपात में स्वर्णखण्ड लाकर वृद्धों को देते रहे, जिसे भाविक वृद्ध कारीगरों में वितरित कर देते। आश्चर्य तो सभी को था; किन्तु उन वृद्धों के हृदय में तीव्र कौतूहल होने लगा कि महाराज इतना स्वर्ण कहाँ से ले आते हैं। यह क्रिया जानकर हम भी अपने गृहकार्य

की व्यवस्था, नाती-पोतों का विवाह भी आसानी से कर लेते। आपस में बहुत विचार करके उन्होंने सलाह किया और महाराजजी से निवेदन किया कि आप प्रतिदिन सोना ले आते हैं आपको कितना कष्ट होता है। यह कार्य तो हम लोग ही कर सकते हैं। क्या आपका हमारे ऊपर विश्वास नहीं है? आप तो इसे छूते भी न थे; आपको यह शोभा भी नहीं देता। आप केवल स्थान भर बता दें और यहीं आसन पर विराजें। आपके आदेशानुसार हम लोग वितरण करते रहेंगे।

जब बड़े-बूढ़े पीछे पड़ गये तो महात्मा ने विचार किया कि मेरे भक्त ठीक ही तो कहते हैं। फिर मुझे स्वर्ण से क्या लेना-देना है? यदि यही लोग प्रबन्ध कर लिया करें, तो और भी अच्छा है, अत: इन सबको वह स्थान दिखा ही दें। ऐसा निश्चय करके उन सबको साथ लेकर उस स्वर्णचट्टान की तरफ चले। संकेत किया और कहा कि इस स्थान से स्वर्ण लेकर वितरण किया करो।

बूढ़ों का अभीप्सित सामने ही था। उन्होंने आपस में संकेत किया और झपटकर महात्मा को धर दबोचा। समीप के वृक्ष में बाँधने लगे। महात्माजी ने कहा कि अरे! क्या तुम्हारी बुद्धि खराब हो गई है। सनक तो नहीं गये। तुम्हें स्वर्ण लेना है तो ले लो, हमें क्यों बाँधते हो? जानते ही हो कि हमें धन की कोई आवश्यकता भी नहीं है। यह तो परमार्थ में ही मैं लगा रहा था। किन्तु लोभाक्रान्त तथा विवेकरहित वृद्धों ने उधर कोई ध्यान न देकर उन्हें बाँध ही दिया और निश्चिन्त मन से स्वर्ण-चट्टान की तरफ बढ़े। किन्तु यह क्या! वृद्धों के स्पर्श से ही वह चट्टान तो ऊबड़-खाबड़ पत्थर के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी जो अब किसी भी उपयोग में आने लायक न रही। वयोवृद्ध भक्त अब तो उदास हो उठे। कहाँ तो मन ही मन सात पुश्तों तक के प्रबन्ध तक की योजना थी; लड़के-बच्चों की शादी-विवाह की सोच रहे थे, किन्तु अब तो महात्माजी की सेवा और विश्वास से भी गये। सभी ने विचार किया कि अब यदि महात्माजी को खोल भी दें तो कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है। अत: बदनामी के डर से, महाराज के आग्रह पर भी न खोला और आगे बढ़ गये।

तीन-चार दिन उसी तरह बँधे रहने पर महात्मा पुन: महान् दु:ख में डूब गये कि कहाँ फँस गये? कल तक सभी इशारे पर नाचते थे, आज आगे-पीछे कोई भी नहीं है। कष्ट के उन क्षणों में आकाशवाणी गूँज उठी, ''गुरु के वचनों में गुंजाइश, कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! कहा था कि चिंतन-परायण पुरुष को लोककीर्ति, आश्रम, कुटी इत्यादि में नहीं फँसना चाहिए, जैसे-तैसे निर्वाह कर लेना चाहिए। यथा लाभ में संतोष करके वैराग्य की रक्षा करनी चाहिए। बहुत मना करने पर नहीं माने। अब तो बेटा! तुम गिर ही गये।''

महात्मा अधर में लटके ही थे कि आराध्य की प्रेरणा से चरवाहे उधर से निकले और महात्माजी को बँधा देखकर उन्होंने बन्धन खोल दिया। चरवाहों ने बहुत पूछा किन्तु महात्मा मौन धारण कर वहाँ से चल पड़े और अपने गुरुदेव की स्मृति में अधीर होकर रोने लगे। सोचते थे कि गुरुदेव के पास कौन-सा मुख लेकर जाऊँ? इस बार भी आज्ञा का पालन नहीं हो सका। किन्तु अब तो भजन पूर्ण करके कुछ अर्जन करके ही जाऊँगा। उन्होंने निर्जन एकान्त में तपस्थान चुना और इस बार बड़ी सतर्कता और निष्ठा से योग-प्रक्रिया में तल्लीन हो गये। बारह वर्ष बीत गये। भजन से संतुष्ट होकर अब वे गुरुधाम की ओर बढ़े।

गुरुदेव का आश्रम अभी दस-बारह मील दूर था कि शाम होने को आई। महात्मा ने गाँव के बाहर ही तालाब के किनारे भजन करते रात्रि को व्यतीत किया। सूर्योदय के पूर्व ही एक व्यक्ति पास के मार्ग से निकला, महात्मा को देखा, तुरन्त सिर पटककर उतने ही वेग से आगे बढ़ गया। महात्मा से न रहा गया। पूछ ही बैठे कि ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो भागे जा रहे हो? वह व्यक्ति, जो स्वर्णकार था, लौट पड़ा और बोला, ''महाराजजी! परिवार में एक ही लड़का है न जाने कौन-सी बीमारी हो गई है कि सभी वैद्य, डॉक्टर जवाब

दे गये। यही अन्तिम बच्चा है। सब ओर से हताश होकर वैद्य के यहाँ जा रहा हूँ। सम्भव है भगवान उन्हीं को यश देना चाहते हों।''

महात्मा की सावधानी तनिक विस्मृत हुई और अपना तपोबल उन्हें याद आ गया। झटके से उन्होंने अपनी जननेन्द्रिय के पास से एक बाल तोड़ते हुए कहा, ''इसका ताबीज बनाकर बच्चे को पहना दे। देख, फिर क्या होता है?'' वह व्यक्ति सुनार तो था ही, ठोंक-पीटकर ताबीज बनाकर बच्चे के गले में डाल दिया। बच्चे की स्थिति में सुधार होने लगा। बच्चा उठने-बैठने लगा और कुछ ही घण्टों में स्वस्थ हो चला। स्वर्णकार के परिवार के लोग बारी-बारी से तालाब की ओर जाने लगे। कोई दूध लिये है तो कोई दही, तो कोई कुछ अन्य मिष्ठान ही लिए चला रहा है। गाँव का जमींदार बड़ी देर से इन बातों को देख रहा था। वह भी शौच इत्यादि के लिये तालाब की ओर गया था।

वह स्वर्णकार भी दिखाई पड़ा। जमींदार ने पूछ ही तो लिया, ''अरे सुखुआ! तूँ बार-बार घरभर इधर कहाँ जात है? तोरे लरिकवा के का हाल है?'' तब वह बोला, ''मालिक! वह तो ठीक हो गया।'' जमींदार को आश्चर्य हुआ। पुनः पूछा, ''किसकी दवा की? कैसे ठीक हो गया?'' स्वर्णकार ने कहा, ''मालिक दवा तो किसी की कारगर न हुई। हाँ, एक महात्मा इसी तालाब पर आये हैं, उन्हीं के आशीर्वाद से ठीक हुआ है। महात्मा क्या साक्षात् भगवान हैं। बड़े सिद्ध हैं।''

गाँव भर में चर्चा फैल गई। जमींदार, छोटे-बड़े सभी लोग तालाब पर एकत्र होने लगे। कोई लड़की के विवाह की प्रार्थना सुना रहा था, कोई जन्मजात रोगी था, कोई पागल था, किसी को निर्धनता ने परेशान कर रखा था-इत्यादि समस्यायें आने लगीं। दुनिया ही दुखी है पर तिसपर गाँव भर वहीं था। अतः समस्याओं का ढेर लग गया। महात्मा जाना भी चाहते तो सभी उनके पैरों के नीचे लेट जाते थे। तब महात्मा वहीं आसन पर बैठ गये और समझाने लगे कि हम कुछ भी नहीं जानते, आप लोग भ्रमवश मेरा पीछा कर रहे हैं। किन्तु सभी के सामने प्रकरण बहुत ही बड़ा था। सभी कहने लगे कि आप महापुरुष हैं, अपने को छिपा रहे हैं। सम्भावित पुरुष अपने को छिपाते ही हैं।

धीरे-धीरे साँझ होने को आई और लोगों को अपने घर, पशुओं की व्यवस्था का ध्यान आया। लोग उकताने लगे तो जमींदार ने सुनार से पूछा-''अरे सुखुआ! ई तो बता कि तोरे लरिका के महाराज का दिये रहे?'' तब वह बोला, ''मालिक! मैं वैद्य के पास जा रहा था कि महाराज दिखाई पड़े। मैंने सोचा कि बच्चे का अन्तिम समय है, शायद दुआ ही लग जाय। जब मैं प्रणाम करके आगे बढ़ा तो इन्होंने पूछा कि ऐसी क्या व्यग्रता है कि भाग रहे हो? जब मैंने लड़के की दयनीय दशा सुनाई तो इन्होंने अपनी जननेन्द्रिय के बगल का एक बाल उखाड़कर उसे ताबीज में भरकर पहनाने को कहा, जिससे बच्चा स्वस्थ हो गया।''

जमींदार ने कहा कि तब महाराजजी को क्यों परेशान कर रहे हो। जब इन बालों में इतना गुण है तो प्रार्थना करके महाराजजी के सब बाल ही क्यों नहीं ले लेते हो। बाल निर्जीव होते हैं। कभी-न-कभी कटते ही हैं, नाई बुलवा कर कटवा लो और हम लोग आपस में बाँटकर महाराजजी को जाने दें।

इतना सुनने पर नाई घर की ओर दौड़ गया; क्योंकि उस्तरा तो घर पर ही था। महात्माजी के बगल में एक अत्यन्त गरीब आर्त भक्त भी खड़ा था। उसने सोचा कि बड़े आदमियों का मामला है, पता नहीं उसके हिस्से में बाल आये या न आये। यदि बाल न मिला तो दुःखी का दुःखी ही रह जाऊँगा। अधीरता से सोचते-सोचते उसने अचानक लपककर महात्माजी के बालों में हाथ लगाया और नोंचकर भागा। फिर कौन प्रतीक्षा करता! बात-की-बात में सभी टूट पड़े और महाराजजी के सिर से पाँव तक का एक बाल भी नहीं बचा। नाई कुछ देर

से पहुँचा। रही सही कसर उसने पूरी कर दी। वस्तु जब समाप्त हो गई तो महात्मा को ही लेकर सब क्या करते, अत: वहीं महात्मा को छोड़कर सभी अपने घर चले गये।

अब तो वे साधु मेड़ पर अकेले विकल पड़े-पड़े विलाप करने लगे तथा बार-बार गुरुदेव का स्मरण करने लगे। पुन: आकाशवाणी हुई, ''गुरु के वचनों में गुंजाइश कलियुग की तिकड़मबाजी। बेटा! तू फिर गिर गया।'' साधु को विश्वास हो गया कि अब हमारे करने से कुछ नहीं होगा। जैसे भी हो गुरुदेव की शरण में अविलम्ब पहुँचें। अत: उसी प्रकार बिलखता, विलाप करता गुरुदेव के आश्रम में पहुँचा। गुरुदेव ने कहा, ''क्यों बेटा! अब घूमने की इच्छा नहीं है? बेटा तू श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है, मगर चाह करके भ्रष्ट है।'' गुरुदेव ने उस साधक की दयनीय दशा पर तरस खाकर उसके पुनरुद्धार का प्रयास किया और अपने प्रभूत अनुभवों द्वारा समझाते हुए कहा, ''बेटा! भगवान की आज्ञा मानना, उसका पालन करना ही भजन है। अरे! भजन तो स्वयं भगवान ही करते हैं। साधक को तो निमित्त मात्र बनकर खड़ा रहना चाहिए। तुमने अपनी कल्पित क्षमता से वैराग्य तथा तीर्थाटन का संकल्प बनाया और पथ से विचलित हो गये। जब तक भगवान हृदय में प्रकट होकर निर्देश न देने लगे तब तक अपने मन से कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए और किसी महापुरुष की शरण पकड़कर सर्वतोभावेन उन्हीं के आदेशों का पालन करना चाहिए। साधक के लिये यही भजन है।''

वीर बालक जेरापुर-नरेश

– सज्जनसिंह

हैदराबाद राज्य के पास जेरापुर नाम की एक छोटी-सी हिन्दू रियासत थी। सन् 1857 के विद्रोह में वहाँ के राजा ने अंग्रेजों से लड़ने के लिये अरब और रोहिल्य-पठानों की एक सेना जुटायी, लेकिन वह राजा उस समय बालक ही था। उस समय के हैदराबाद निजाम के मंत्री सालारजंग ने उसे धोखे से गिरफ्तार कर लिया और अंग्रेजों को सौंप दिया।

कर्नल मेरोज टेलर नाम के एक अंग्रेज अधिकारी से इस राजा का बड़ा प्रेम था। राजा उन्हें ''अप्पा'' कहा करता था। कर्नल टेलर राजा से जेलखाने में मिलने गये और बालक समझकर उन्हें फुसलाने लगे,-''यदि तुम दूसरे विद्रोह करने वालों का नाम बता दोगे तो तुम्हें क्षमा कर दिया जाएगा।''

लेकिन सच्चे और बहादुर बालक अपने साथियों से विश्वासघात नहीं करते। राजा ने हँसकर कहा,-'अप्पा! मैं किसी का नाम नहीं बताऊँगा। अपने प्राण बचाने के लिये मैं अपने देश के भाईयों को संकट में नहीं डालूँगा। मैं तो आप लोगों से क्षमा भी नहीं माँगना चाहता। दूसरों की दया पर मुझे कायर के समान जीना अच्छा नहीं लगता।''

कर्नल टेलर ने कहा,-''तुम जानते हो कि तुम्हें प्राण दण्ड मिलेगा?'' उस बालक राजा ने कहा,-''हाँ, मैं जानता हूँ, लेकिन मेरी एक प्रार्थना मानो तो मुझे फांसी पर मत चढ़ाना। मैं चोर नहीं हूँ। मुझे तोप से उड़ा देना। तुम भी देखना कि मैं तोप के मुँह के सामने किस प्रकार शान्ति से खड़ा रहता हूँ।''

कर्नल टेलर के कहने से राजा को बालक समझ कर कालेपानी की सजा दी गई। सजा सुनकर राजा ने कहा,-''जेल और कालेपानी की सजा तो मेरे यहाँ का एक कंगाल पहाड़ी भी पसंद नहीं करेगा, मैं तो राजा हूँ। कालेपानी के बदले मैं मृत्यु पसंद करता हूँ।'' राजा ने एक अंग्रेज पहरेदार के हाथ से झटक कर पिस्तौल छीन ली और अपने ऊपर गोली दाग दी। एक सुकुमार बालक की यह वीरता देखकर अंग्रेजों को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी।

विचार-सरिता

(पञ्चत्रिंशत लहरी)

- विचारक

वेदान्तगत ग्रन्थ विचारसागर में एक दोहा लिखा गया है कि-

अविनाशी आतम अचल, जग तातें प्रतिकूल।
ऐसा ज्ञान विवेक है, सब साधन का मूल।।

ज्ञान के जो चार साधन कहे जाते हैं उनमें यह पहला और मुख्य साधन है जिसे विवेक कहा गया है। विवेक अर्थात् विचार द्वारा सत् और असत् का विभाग करके असत् से उपरामता करने का नाम ही विवेक है। वेद के अनुसार समझा जाय तब तो 'एको ब्रह्म द्वितीय नास्ति' का उद्घोष है पर हम अज्ञानी मानव ब्रह्म की सत्ता को न समझ कर दिखने वाली वस्तु को ही सत्य मान लेते हैं। इसे ठीक से समझने के लिये या जिज्ञासु साधकों के लिये यह आवश्यक है कि हम एक ही ब्रह्म के दो विभाग करें तो जल्दी समझ में आएगा कि सत्य ब्रह्म (जो अदृश्य) है या दृष्टिगोचर होने वाला जगत सत्य है।

इन दोनों में एक वस्तु शाश्वत, अटल और विनाश से रहित है तथा दूसरी वस्तु जिसे वेदान्तगत शास्त्रों में अवस्तु की संज्ञा दी गई है, वह विनाशी, परिवर्तनशील और जड़ व अनित्य है। जो अनित्य व विनाशी है उससे उपरामता और अटल व अविनाशी तत्व से सम्बन्ध जोड़ना है। हमारा स्वरूप (आत्मा) और चेतन ब्रह्म ये दोनों एक जाति के हैं तथा देह व संसार ये भी दोनों एक ही जाति के हैं। साधक को चाहिए कि वह इस प्रकृति के अंश देह में अहंबुद्धि न करके अपने स्वरूप में अहंबुद्धि करे। हमारा स्वरूप (आत्मा) कभी बदलता नहीं। वह सदैव ज्यों का त्यों बना रहता है। इसका न आदि है न अन्त है। आत्मा जन्म-मृत्यु से रहित है तथा कालातीत व अविनाशी है। देश, काल, परिस्थिति से जो परे है, जिसे न ज्ञानेन्द्रियाँ जान सकती हैं, न मन ही समझ सकता है और न बुद्धि ही पहचान सकती है। वह तत्व तो ऐसा है कि चेतन व साक्षी होने के कारण ज्ञानेन्द्रियों की चेष्टाओं को, मन की स्फुरणा को, बुद्धि के निर्णय आदि को भलीभाँति जानता है, क्योंकि आत्मा की सत्ता से ही ये सब अपने-अपने कार्य व्यवहार में गतिमान हैं।

जगत नाम से जाना जाने वाला यह प्रपञ्च आत्मा के धर्मों से बिल्कुल विपरीत है। अन्तरिक्ष में प्रतीत होने वाले समस्त नक्षत्र, निहारिकाएँ, सूर्य, चन्द्रमा आदि व पृथ्वी पर भासित होने वाले समस्त दर्शनीय पदार्थ भी स्थाई नहीं हैं, वे सब विनाशी व परिवर्तनशील हैं। उनकी क्षणभंगुरता पल-पल में देखी जा सकती है। यहाँ ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसे हम जैसा पहले क्षण में देखते हैं वह दूसरे क्षण में वैसा का वैसा रहता ही नहीं। देहादि समस्त दृश्य-जगत सतत् परिवर्तन और विनाश की ओर अग्रसर है। यह सरक रहा है, इसीलिए तो एक नाम इसका संसार भी रखा गया है। जब यह बात साधक को भलीभाँति समझ में आ जाय तो ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इन अनित्य व क्षणभंगुर पदार्थों में रुचि लेकर संचय करेगा। इस मायावी जगत का बदलना शाश्वत है और इसके अधिष्ठान स्वरूप आत्मा का न बदलना शाश्वत है।

साधक को इन दो में से एक का चयन करना होगा। यदि हम विनाशशील प्रकृति के कार्यरूप इस भासित जगत व देहादि को अपना या मैं मानकर अहंबुद्धि कर रहे हैं तो यह ठीक नहीं है। इससे बहुत बड़ा धोखा होगा। यहाँ हमें हमारे विवेक को ठीक से जगाना होगा। जो हम वास्तव में हैं ही नहीं उसे यदि हम अपना आप मान रहे हैं या 'मेरा है' ऐसा मान रहे हैं तो बड़ी भारी भूल कर रहे हैं। माता-पिता, पुत्र, पत्नी, सगे सम्बन्धी आदि कुटुम्ब को यदि हम अपना मानकर उनके वियोग पर शोक करते हैं तो इसी शरीर के भिष्टा में निकलने वाले कृमि (कीड़ों) के त्यागने पर भी तो शोक व्यक्त करना चाहिए। शरीर से उत्पन्न जूं व लीख को शरीर से अलग फेंकने में सुखानुभूति नहीं होनी चाहिए अपितु उनसे राग होनी चाहिए। ऐसे ही पुत्रादि समस्त स्वजनों में जो अपनत्व या प्रीति है यह हमारी दुर्बुद्धि का ही परिणाम है।

असंख्य जन्मों में जो हमें माता, पिता मिले थे वे अब नहीं रहे फिर भी हम उनके लिये कभी भी शोक नहीं करते तो वर्तमान के माता-पिता या स्वजनों में ऐसा क्या है, जिनके लिये शोक किया जाय। कर्तव्य निर्वहन हेतु हम उनकी सेवा अवश्य करें न कि मोह से ग्रसित होकर। प्रकृति के कार्यरूप जगत में निरासक्त होकर रहना ही वास्तव में रहना है। इस देह चदरिया को तो ज्यों की त्यों धर देनी है, इसे कभी भी 'मैं' नहीं मानना है। स्वरूपानुसंधान विधि से इस देह प्रपञ्च के द्रष्टा बनकर रहना ही साधक का असली उद्देश्य होना चाहिये। देह व दृश्य बदलते हैं आप बदलते नहीं हो। दृश्य अनन्त हैं पर आप एक हो। आपकी सत्ता से ही देह के छ: विकार, चार अवस्था व तीन गुण जाने जाते हैं। जो आप द्वारा जानकारी में आ रहा है वह सदैव आप से भिन्न और अनित्य है। आप के स्वरूप की सत्ता के बिना ये तीनों अवस्थाएँ निष्क्रिय हो जाती हैं। विशेष बात यह है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषोप्ति आदि जो शरीर की अवस्थाएँ हैं ये आत्मा के बिना नहीं पर आत्मा में नहीं। जैसे आकाश के बिना बादल, पानी, बिजली व उसकी गर्जनादि हो ही नहीं सकते पर पानी के होते हुए भी आकाश में कोई गीलापन नहीं तथा मेघों की गर्जना व बिजली की चौंध से आकाश में कोई विकृति नहीं आती। ऐसे ही आत्मा के कारण ही इन अवस्थाओं में क्रियाकलाप चल रहा है परन्तु आत्मा इनके साथ रहते हुए भी अछूता है।

इस गूढ़ बात को समझने के लिये एक दृष्टांत का सहारा लिया जा रहा है। तीन व्यापारी थे जिन्होंने अपनी-अपनी हिस्सा-राशि लगाकर साझे में घोड़ों का व्यापार किया। लगाई गई पूंजी के अनुसार एक व्यापारी ने जो पूंजी लगाई, उसके मुताबिक वह आधे का हकदार था। दूसरा तीसरे हिस्से का तथा तीसरा केवल नौवें हिस्से का भागीदार था। तीनों एक पशु मेले में गए और समस्त पूंजी से सतरह घोड़े खरीद लिये। वापस घर को आने लगे तो एक ने कहा कि घोड़ों का बटवारा कर लिया जाय। जिसके हिस्से में जितने घोड़े आवें उतने उसे सौंप दिये जांय। जब बटवारा करने लगे तो जिसने ज्यादा पूंजी लगाई थी वह सबसे पहले बोला कि मुझे मेरी पूंजी के अनुसार आधे घोड़े लेने दो। तब समस्या यह आई कि सतरह का आधा साढे आठ होता है अत: आधा घोड़ा कैसे विभाजित हो। ऐसे ही दूसरे व तीसरे व्यापारी के सामने समस्या आ रही थी। तीनों में बटवारे को लेकर झगड़ा होने लगा। तभी वहाँ एक घुड़सवार आया और उसने उनकी समस्या को समझा और तत्काल बोला कि भैया आप झगड़ो मत मैं आपका बटवारा किये देता हूँ। घुड़सवार ने कहा-बिना कीमत लिये ही मैं मेरा घोड़ा आप लोगों को सौंप रहा हूँ तथा अब आप यह समझें कि आपके पास कुल अट्ठारह घोड़े हैं। जिसकी आधी रकम लगाई हुई थी उसे अट्ठारह में से नौ घोड़े दे दिए। जो तीसरे हिस्से का हकदार था उसे छ: घोड़े पकड़ा दिये और जो नौवें हिस्से का मालिक था उसे दो घोड़े दे दिये। इस प्रकार तीनों अपने-अपने हिस्से के घोड़े लेकर चल दिये तथा शेष रहा एक घोड़ा जो उस घुड़सवार का ही था। अत: वह भी अपने घोड़े को लेकर चलता बना।

इस पूरे दृष्टांत का अभिप्राय यह है कि हमारे इस देह रूपी मेले में तीन व्यापारी हैं- 1. विश्व, 2. तैजस, 3. प्राज्ञ। हमारी जीवात्मा जब जाग्रत अवस्था का अभिमान करके नेत्रों द्वारा विश्व का दर्शन करती है तब उसे विश्व जीव कहा गया है। छ: उर्मि रूप उसके छ: घोड़े जो उसके हिस्से में आए, वे हैं 1. जन्म, 2. मरण, 3. भूख, 4. प्यास, 5. हर्ष और 6. शोक। इस छ: विकारों से ही स्थूल देह का व्यापार चलता है और स्थूल का अभिमानी होने से वह जीवात्मा विश्व नाम से जानी जाती है।

दूसरा व्यापारी तैजस है। स्वप्न अवस्था के अभिमान से उसी जीवात्मा का निवास कण्ठ में माना गया है। वहाँ बाल के हजारवें भाग जितनी सूक्ष्म हिता नाम की नाड़ी में जाग्रत में देखी-सुनी वस्तुओं का तेज ही वहाँ जगत के अनुरूप एक सृष्टि की रचना शुरू हो जाती है और जब तक स्वप्न चलता है तब तक वह जाग्रतवत सच्चा ही जान पड़ता है। वहाँ उस व्यापारी रूप तैजस जीव के पास नौ घोड़ों से सारा व्यवहार हो रहा है। पांच

ज्ञानेन्द्रियाँ व चार मनादि अन्त:करण, ये कुल नौ घोड़े सूक्ष्म शरीर में दौड़ लगा रहे होते हैं। सूक्ष्म देह का अभिमानी होने से वही जीवात्मा यहाँ तैजस कहा गया है।

तीसरा व्यापारी प्राज्ञ है। जिसका निवास हृदय देश में माना गया है और कारण शरीर का अभिमानी होकर सुषोप्ति अवस्था में अज्ञान के आश्रित आनन्द की अनुभूति करता है। वहाँ उसके दो घोड़ों के रूप में अज्ञान और वासना है। सुषुप्त अवस्था में मन-बुद्धि आदि सब गट्ठारूप हो जाते हैं इसलिए वहाँ निर्विकल्प स्थिति बन जाती है। स्थूल और सूक्ष्म देह का कारण होने से इस देह को कारण-शरीर कहा गया है।

उपरोक्त दृष्टांत और सिद्धान्त के माध्यम से हमें यह भलीभाँति निश्चयपूर्वक समझ लेना है कि अट्ठारहवाँ जो हमारा चेतन तत्व है वह इन सत्रह के साथ रहकर समस्त क्रियाएँ तो करवाता है फिर भी आप स्वयं निर्लिप्त ही रहता है। हमारा चेतन स्वरूप इन सबको सत्ता देकर कार्य व्यवहार करवाता है पर आप निश्चल व निर्विकार रूप से ज्यों का त्यों ही बना रहता है। जब तक साधक अपने स्वरूप को भलीभाँति नहीं पहचान पाता है तब तक ही वह कुटुम्ब-परिवार आदि में हर्ष व शोक को अपने में आरोप करता ही रहेगा और उसे कभी भी आनंद की अनुभूति हो ही नहीं पाएगी। स्वरूपानुभूत महापुरुष कभी दु:खी होते ही नहीं वे तो अपनी मौज में मस्त बने रहते हैं।

*

पृष्ठ 18 का शेष

असतो मा सद्गमय

रूपं दृश्यं लोचनं दृक तद्दृश्यं दृकु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तयस्साक्षी दृगेव न तु दृश्यते।।

अर्थात् ''रूप दृश्य है, जिसे नेत्ररूपी द्रष्टा देखता है। वह (नेत्र) दृश्य है, और मन द्रष्टा है। बुद्धिवृत्तियाँ साक्षी के द्वारा देखी जाती हैं, जो द्रष्टा है। लेकिन साक्षी (आत्मा) किसी के द्वारा नहीं देखा जाता।''

इस तरह आत्मविश्लेषण तथा हमारे वास्तविक स्वरूप का अन्वेषण किया जाता है। इससे दृश्य पदार्थों के द्रष्टा, साक्षी आत्मा की झलक प्राप्त होती है। लेकिन चरम सत्य दृश्य तथा द्रष्टा दोनों के परे है।

जब तुम बहुत मननशील होते हो, तब तुम अपने आपसे कहते हो, ''यह विचार मेरे मन में उठ रहा है'' इत्यादि। इस तरह तुम अपने ही विचारों के द्रष्टा बन जाते हो। मन, उठ रहे तथा विलीन हो रहे अनेक विचारों द्वारा निर्मित है। अत: मन निरंतर परिवर्तित होता रहता है। लेकिन साक्षी आत्मा कभी परिवर्तित नहीं होता। मानव की सत्य की सभी गवेषणाएँ सदा इसी अपरिवर्तनशील आत्मा से प्रारम्भ होनी चाहिए। आत्मचेतनसत्ता हमारे समग्र व्यक्तित्व का मूल आधार है। समग्र भौतिक और मानसिक परिवर्तनों के बीच हममें कोई अपरिवर्तनशील सत्ता बनी हुई है। और इससे हमें चरम सत्य की प्राप्ति की दिशा प्राप्त होती है।

जो वस्तु हमारी चेतना में सत्य है, वह सदा सत्य बनी रहती है। यदि बुदबुदा नष्ट हो जाए, तो भी जल के कण बने रहते हैं। देह बुदबुदा है, आत्मा मानो जल बिन्दु है। हमारी वास्तविक सत्ता सदा बनी रहती है। जो चरम सत्य नहीं है, वह नष्ट हो जाता है। देह नष्ट हो जाती है; अपरिवर्तनशील आत्मा नित्य, अमर बनी रहती है।

हमारी अपने सम्बन्ध में धारणा का हमारी गतिविधियों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मान लो कि हम स्वयं को देह समझते हैं, तब शारीरिक सुख-भोग जीवन का उद्देश्य बन जाता है। और मान लो, हमारी यह मान्यता बन जाय कि आत्मा मृत्यु के बाद बनी रहती है, तथा हमारा भावी जीवन पूरी तरह हमारी वर्तमान शारीरिक और मानसिक क्रियाओं पर निर्भर है, तब हमारा दृष्टिकोण क्या होगा? तब हम भिन्न प्रकार से आचरण करेंगे, क्योंकि मृत्यु के समय सब कुछ नष्ट हो जाने वाला नहीं है। तब फिर हम उसकी खोज करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे हमारी आत्मा को पूर्णता, शान्ति और धन्यता प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि हमारे दृष्टिकोण का, हमारे दैनन्दिन आचरण और चिंतन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। विवेक के द्वारा हमें सही दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए।

(क्रमश:)

अपनी बात

संसार में अनेक महापुरुष हुए हैं। अनेक लोगों ने परम प्रभु की अनुभूति की है। लेकिन उनके द्वारा जो अभिव्यक्ति हुई है उसमें एक-दूसरे से भेद नजर आता है। लगता है कि वे एक दूसरे के विरोधी हैं। तब शंका उठती है कि उन्होंने जो पाया है वह भी भिन्न-भिन्न है। पर प्राप्त पुरुषों का कहना है कि अनुभूति सबकी एक ही है क्योंकि अस्तित्व एक ही है। अनुभूति में कोई भेद है ही नहीं लेकिन अभिव्यक्ति में भिन्नता है। इस अभिव्यक्ति की भिन्नता को देखते हैं तब तो परस्पर विरोध दिखाई पड़ता है। साधारण ही नहीं परस्पर असाधारण शत्रुता दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह है कि अभिव्यक्ति अनुभूति से नहीं आती, अभिव्यक्ति व्यक्ति से आती है।

मैं एक बगीचे में जाऊँ जहाँ फूल खिले हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, एक रुपया पड़ा है। अगर मैं रुपए का मोही हूँ, तो मुझे फूल दिखाई नहीं पड़ेंगे। पक्षियों के गीत सुनाई पड़ते हुए भी मुझे सुनाई नहीं पड़ेंगे। बगीचे में जो कुछ है, वह सब कुछ खो जाएगा और मुझे केवल रुपया ही दिखाई पड़ेगा। रुपया मेरी जेब में आ जाए तो शायद पक्षियों के गीत भी सुनाई दे जाएँ।

लेकिन यदि एक कवि बगीचे में प्रवेश करता है तो उसे रुपया दिखाई ही नहीं पड़ेगा। जहाँ पक्षियों का कलरव हो रहा हो, वहाँ यदि उसको रुपया दिखाई पड़ता है तो वह कवि है ही नहीं। कवि का तो सारा व्यक्तित्व पक्षी के गीतों की तरफ बह जाएगा। यदि कोई चित्रकार बगीचे में प्रवेश करता है, तो उसका सारा व्यक्तित्व बगीचे में प्रकट रंगों के लिये बह जाएगा।

अब एक ही बगीचे में जाकर वे अपने गाँव में आते हों और उनसे पूछा जाए कि बगीचे में क्या देखा? बगीचा एक था, जहाँ वे गये थे, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति भिन्न होगी। अभिव्यक्ति में चुनाव होगा। जो जिसने देखा होगा, या जिसने जिसको पकड़ा है या जो जिसको प्रकट कर सकता होगा, वह वैसे ही प्रकट करेगा।

मीरा ने भी उस अनुभूति को प्राप्त किया है और लौटकर, प्राप्त कर, नाचने लगी है। महावीर ने भी उसी अनुभूति को प्राप्त किया पर उनके नाचने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सोच भी नहीं सकते कि महावीर और नाचें। उनके व्यक्तित्व में नाचने की कोई जगह ही नहीं है। महावीर भी उस जगत से लौटे हैं पर नाचते नहीं। उस जगत की जो खबर वे लाए हैं, वह खबर अपने ही ढंग से प्रकट करेंगे। उनकी खबर उनकी अहिंसा से प्रकट होनी शुरू होती है। उनके अपने ही ढंग से प्रकट करेंगे। उनकी खबर उनकी अहिंसा से प्रकट होनी शुरू होती है। उनके शील से, उनके उठने-बैठने से, छोटी-छोटी चीज से प्रकट होती है कि वे अद्वैत को जानकर लौटे हैं।

रात में महावीर एक ही करवट सोते हैं, करवट नहीं बदलते। उनसे पूछा जाए इसका कारण तो वे कहते हैं,-करवट बदलूं और कोई कीड़ा-मकोड़ा दबकर दुख पाए, इसलिए एक ही करवट सोता हूँ। एक करवट तो सोना ही पड़ेगा, तो एक ही करवट सोते हैं। रात भर पैर भी नहीं हिलाते कि अन्धेरे में कोई जीव दब जाए और दुख पाए।

इस प्राप्त पुरुष की अद्वैत की जो अनुभूति है, वह अहिंसा से प्रकट हो रही है। महावीर यही कह रहे हैं कि अस्तित्व एक ही है। जब तक यह अनुभव न हो कि कीड़े-मकोड़े में भी वही है, जो मुझ में है, तब तक उसके लिये इतनी चिन्ता पैदा नहीं होती। महावीर का अभिव्यक्ति का यह जो ढंग है, वह उनके व्यक्तित्व से आ रहा है।

मीरा नाच रही है। उन्होंने जो जाना है, प्राप्त किया है, वह उनके भीतर नाच की तरह अभिव्यक्त हो रहा है। वे नाच ही सकती है। वह जो खुशी, वह जो आनन्द उस प्राप्ति का उनके अन्दर भर गया है, उसे कोई शब्द प्रकट नहीं कर सकते। वह तो उनके घुंघरुओं

से प्रकट ही होगा। वे उठी अद्वैत की पद-घुंघरूं-बांध खबर लाएंगी।

अगर हम महावीर और मीरा को आमने-सामने करें तो हम कहेंगे, इनकी अनुभूतियाँ अलग होनी चाहिए। कहाँ बजता हुआ घुंघरू, कहाँ रात भर करवट न लेता हुआ व्यक्ति। कहाँ नाचती हुई मीरा के न जाने कितने पैर पृथ्वी पर पड़े और कहाँ महावीर एक-एक पैर को संभालकर रखते हैं, फूंककर रखते हैं। वर्षा आ जाती है तो चलते नहीं। जमीन गीली हो तो पैर नहीं उठाते कि कहीं कोई कीड़ा न दब जाए। कहाँ नाचते हुए पैर मीरा के। बड़ा विपरीत है। महावीर के कहने से तो मीरा के नाचने में बड़ी हिंसा हो रही है। मीरा कहेगी, नाच ही नहीं रहे हो, उन्होंने उसको जाना कहाँ है। क्योंकि उसे (परमात्मा) जानकर जो नहीं नाचा तो फिर जाना ही कहाँ है, प्राप्त ही कहाँ किया है।

दोनों की जो अभिव्यक्ति है वह भिन्न है पर अनुभूति भिन्न जरा भी नहीं है। उस परम अनुभूति में शब्दों के अर्थ निजी हो जाते हैं। एक तो हमारी भाषा है जिसमें शब्दों के अर्थ समान हैं। हम कहते हैं मकान तो वही मतलब होता है जो किसी दूसरे का है। लेकिन गहरे में देखें तो फर्क होगा। जब कोई कहता है मकान तो उसको अपने मकान का ख्याल आएगा, परन्तु जो दूसरा व्यक्ति सुन रहा है उसे अपने मकान का ख्याल आएगा। अब अगर मकान का चित्रांकन किया जाए तो दोनों व्यक्तियों द्वारा बनाए गये चित्र भिन्न होंगे। यह अभिव्यक्ति की भिन्नता है।

संघ में हमने जीना शुरू किया। ज्यों-ज्यों गहरे उतरते हैं त्यों-त्यों अनुभूति एक ही प्रकार की होती जाती है। परन्तु अपनी संघ की अनुभूति को हम प्रकट करते हैं तो उसमें भिन्नता रहेगी। यह भिन्नता जो दिखाई देगी वह हमारे व्यक्तित्व के कारण है। अहंकार का विसर्जन ही हमारे शाश्वत उद्देश्य की ओर हमें बढाता है। अहंकार का विसर्जन करें तो आनन्द मग्न होकर मीरा की तरह नाच उठें। इसलिए आत्मविश्लेषण निरंतर चलता रहे कि अहंकार से मुक्ति पाने में हम कितने बढ पाए हैं।

✻

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

जीवन यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि रही-योग के अवतरण की। आपके जीवन में योग उतरा, पल्लवित व पुष्पित हुआ। पू. तनसिंहजी ने कहा था कि संघ की साधना परमेश्वर की उपासना ही है। संघ साधना में निमज्जित होकर नारायणसिंहजी ने योग अवतरण से इसे सिद्ध कर दिया। योग यात्रा की उनकी अवधि ने संघ के स्वयंसेवकों को एक ही परिवार के सदस्यों के रूप में पिरो दिया। परस्पर इतनी प्रगाढता पनपी की कोई इस परिवार का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। लक्ष्य की ओर बढते हुए सभी आसक्तियों का त्याग, यहाँ तक की जीवन की आसक्ति का भी त्याग कर दिया। 22 अक्टूबर, 1989 तद्नुसार कार्तिक कृष्णा अष्टमी सं. 2046 को रात्रि 12 बजे इस चोले का भी उन्होंने सहजता से त्याग कर दिया।

ऐसे प्रेरणादायी साधक की जयन्ती मनाना भी प्रेरणा देती है। इसीलिए सभी शाखाओं में जयन्ती मनाई जाती है। जयपुर में संघप्रमुख श्री के सान्निध्य में कार्यक्रम आयोजित हुआ। 29 जुलाई को रविवार होने के कारण मुंबई की भायंदर शाखा में, सूरत के हलधरू स्थित मातेश्वरी सोसायटी में, उदयपुर के ओस्तवाल नगर में, बाड़मेर की भिंयाड़ शाखा में, पाली की छोटी रानी शाखा में, कुचामन में, बीदासर में, नागौर के अमर राजपूत छात्रावास में तथा शहीद सुमेरसिंह झटेरा स्मारक पर तथा बीकानेर के नारायण निकेतन में जयन्ती मनाई गई।

30 जुलाई को चित्तौड़गढ़, कल्याणपुर, वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास बालोतरा, राजगढ, पिलुड़ा, वलादर, नारोली, काबुण, थराद, तेजमालता, रामगढ, राधवा, जैसलमेर, मूलाना, देवीकोट, बेरसियाला, जोधपुर, सोजत रोड़, भावनगर, शक्तिधाम सुरेन्द्रनगर, काणेटी, धोलेरा, पांची, अहमदाबाद, मेहसाणा, भक्तिनगर, मोरचंद, सामपुरा, भलगामड़ा, धंधुका व सरसाव में जयन्ती कार्यक्रम का आयोजन हुआ।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
01.	प्रा.प्र.शि.	8.9.2018 से 10.9.2018	जाडी–तह. धानेरा। धानेरा से रेल व बस सेवा।
02.	प्रा.प्र.शि.	16.9.2018 से 19.9.2018	डंडाली–गोपणेश्वर महादेव मंदिर–सिणधरी, बालोतरा व बायतु से बसें।
03.	प्रा.प्र.शि.	16.9.2018 से 19.9.2018	मोड़ी माताजी (म.प्र.)–तह. जावद, जिला–नीमच।
04.	प्रा.प्र.शि.	16.9.2018 से 19.9.2018	जगदीश उमरी जिला–भीलवाड़ा, रायपुर व बोराणा से बस।
05.	प्रा.प्र.शि.	16.9.2018 से 19.9.2018	चावण्ड–महाराणा प्रताप समाधि स्थल। सलुम्बर–परसाद रोड़ पर।
06.	प्रा.प्र.शि.	16.9.2018 से 19.9.2018	फतहनगर, चित्तौड़–उदयपुर मार्ग पर वाया मावली।
07.	प्रा.प्र.शि.	18.9.2018 से 21.9.2018	दासपां–भीनमाल व सियावट से बस सम्पर्क– भैरूसिंह दासपां–9769218714
08.	प्रा.प्र.शि.	18.9.2018 से 21.9.2018	विरोल–शिव मंदिर। सांचोर से बस। सम्पर्क– देवेन्द्रसिंह विरोल–7976005765
09.	प्रा.प्र.शि.	18.9.2018 से 21.9.2018	मालगढ (आहोर), भाद्राजून से बस। सम्पर्क– गणपतसिंह भंवरानी–9828136005
10.	प्रा.प्र.शि.	19.9.2018 से 22.9.2018	जैसलमेर
11.	प्रा.प्र.शि.	19.9.2018 से 22.9.2018	नोखा गाँव–नोखा शहर से 5 कि.मी. बीकानेर रोड़ पर। सम्पर्क– मेघसिंह नोखा गाँव–9413311885
12.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	रिड़मलसर, नागोर–फलोदी मार्ग पर चाडी उतरें, वहाँ खूब साधन हैं। बीकानेर, फलोदी, जोधपुर से सीधी बस। सम्पर्क– श्रवणसिंह–8003407777
13.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	जेवलियावास–डीडवाना से बस। सम्पर्क– मंगेजसिंह–9829842658
14.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	जलनियासर–नागोर से सीधी बस।

15.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	लापोड़िया-दूदू से हरसोली, हरसोली से 3 कि.मी. दूर लापोड़िया।
16.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	नाथूसर-रींगस से अजीतगढ़ रोड़ पर।
17.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	सूरजपुरा रोड़, जाली फार्म, दौसा।
18.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	कोटी खेड़ी-बहरोड़ से अटेली मण्डी मार्ग पर।
19.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	बाड़मेर-भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम। गेहूँ-विशाला रोड़ पर।
20.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	नानण, पीपाड़-बोरून्दा मार्ग पर।
21.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	आसरलाई-देचू से टैक्सी।
22.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	कबरई (उ.प्र.) रेलमार्ग से महोबा, वहाँ से बस द्वारा कबरई।
23.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	20.9.2018 से 23.9.2018	चरखारी, महोबा से चरखारी किला ऑटो या बस द्वारा।
24.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	धामड़ोज (गुड़गाँवा)
25.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	ताल (म.प्र.)-तहसील-विक्रमगढ आलोट, जिला-रतलाम।
26.	प्रा.प्र.शि.	20.9.2018 से 23.9.2018	नंदेरा (बांदीकुई)-चौहान पब्लिक स्कूल, हरिपुरा रोड़, नंदेरा। सम्पर्क सूत्र : श्री दशरथसिंह नंदेरा-9461779414
27.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2018 से 24.9.2018	झाक (बाटाड़ा)-बाड़मेर से नीम्बला होते हुए मौखव गाँव के पास झाक बाटाड़ा, नागणेची माता मंदिर।
28.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2018 से 24.9.2018	रोहट-गाजणमाता मंदिर धर्मधारी-रोहट व पाली से साधन।
29.	प्रा.प्र.शि.	21.9.2018 से 23.9.2018	सच्चाणा (गुजरात), खेतिया नागदेव। साणंद-वीरमगाँव रोड़ पर स्थित।
30.	प्रा.प्र.शि.	27.9.2018 से 30.9.2018	रायसर, बीकानेर से डूंगरगढ़ मार्ग पर स्थित।
31.	प्रा.प्र.शि.	27.9.2018 से 30.9.2018	बरडाना, नाचना-रामदेवरा मार्ग पर स्थित।

32.	प्रा.प्र.शि.	27.9.2018 से 30.9.2018	कांकराला, बालोतरा, समदड़ी व कल्याणपुर से बसें।
33.	प्रा.प्र.शि.	27.9.2018 से 30.9.2018	लूणावास कलां, जोधपुर में दलेखां चक्की से बस।
34.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	चौबारा-दिल्ली-जयपुर नेशनल हाईवे 8 पर शाहजहाँपुर से 1 कि.मी. दूर।
35.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	कालाथल-बालोतरा, गिड़ा, पाटोदी से बस हैं।
36.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	कड़वा (ओसियाँ)
37.	मा.प्र.शि.	14.10.2018 से 20.10.2018	सुजानसिंह का फार्म हाउस, जूना। बाड़मेर से जूना पतरासर रोड़।
38.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	उदट-बीकानेर, कोलायत, नोखड़ा से बसें। सम्पर्क सूत्र- श्री भँवरसिंह उदट-9783134728
39.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	किशनगढ़-राजपूत छात्रावास। अजमेर-जयपुर मार्ग पर स्थित।
40.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	करड़ेश्वर महादेव करड़ा-भीनमाल, सांचोर से बस।
41.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	शंखेश्वर महादेव डोडियाली-हरजी व उम्मेदपुर से बस व टैक्सी।
42.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	लोहागर मंदिर, सुमेर। देसूरी व जोजावर से साधन। सम्पर्क सूत्र - श्री योगेन्द्रसिंह बासनी-8094010093
43.	मा.प्र.शि.	15.10.2018 से 21.10.2018	अमृतनगर, बालेसर सतां (शेरगढ) श्रीलाल उ.मा.वि. अमृतनगर।
44.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	17.10.2018 से 19.10.2018	रामदेवरा-पोकरण, फलौदी, जैसलमेर से रेल व बस सुविधा।
45.	प्रा.प्र.शि.	19.10.2018 से 22.10.2018	खारा-बीकानेर से लूणकरणसर मार्ग पर। सम्पर्क सूत्र- श्री विजयसिंह खारा-9829241915
46.	प्रा.प्र.शि.	19.10.2018 से 21.10.2018	काणेटी, तह. साणंद (गुजरात)।
47.	मा.प्र.शि.	25.10.2018 से 31.10.2018	कानोड़ (सिवाना) बायतु, गिडा, बालोतरा से बस है।

48.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	25.10.2018 से 28.10.2018	बी.जे.एस. जोधपुर।
49.	मा.प्र.शि.	26.10.2018 से 1.11.2018	बाप (फलौदी), जैसलमेर, पोकरण, फलोदी, बीकानेर से हर समय बस। सम्पर्क सूत्र- श्री मूलसिंह मोडरड़ी-9672840955 श्री गणपतसिंह अवाय-9414149797
50.	मा.प्र.शि.	26.10.2018 से 1.11.2018	राणियावास (नायला) व्यवस्थापक-श्री राजेन्द्रसिंह चौहान-9414228383
51.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	खेतलावास-सायला-जीवाणा से टैक्सी।
52.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	हनुमान जी का मंदिर भवानीगढ-रेवदर व जसवंतपुरा से बस व टैक्सी।
53.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	सांडेराव-निम्बेश्वर महादेव मंदिर। फालना, सांडेराव से बस। सम्पर्क सूत्र-श्री पर्वतसिंह खिंदारागाँव-9887114322
54.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	घंटियाल (बीदासर) बीदासर एवं सुजानगढ़ से बसें उपलब्ध।
55.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	रायथलिया (मकराना)-कुचामन-तोषीणा मार्ग पर स्थित है। कुचामन से पर्याप्त साधन हैं। सम्पर्क सूत्र- श्री जितेन्द्रसिंह रायथलिया-9610521884
56.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	करमा-चांदन से करमा।
57.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	किलचू-चौपड़ा कटला से बसें। सम्पर्क सूत्र-श्री पुष्पेन्द्रसिंह किलचू-9413388044
58.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	29.10.2018 से 1.11.2018	नांगल-जैसा बोहरा (जयपुर)।
59.	प्रा.प्र.शि.	29.10.2018 से 1.11.2018	कांकाणी। जोधपुर-पाली मार्ग पर।
60.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	29.10.2018 से 31.10.2018	तखतगढ। अभय नोबल स्कूल। सांडेराव, सुमेरपुर से जालोर मार्ग पर। सम्पर्क सूत्र-श्री शम्भूसिंह बालोत-9413078545
61.	मा.प्र.शि.	29.10.2018 से 4.11.2018	धनोप माता। शाहपुरा-केकड़ी मार्ग पर फूलियाथाना से 5 कि.मी. पर मंदिर।

✲ गणवेश व आवश्यक साहित्य लेकर आवें।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

प्रहलाद सिंह
9829297971

नेशनल
ऑप्टिकल

डॉक्टरी नम्बर व धूप के चश्मे
कॉन्टेक्ट लेंस सेन्टर
कम्प्यूटर द्वारा आँखों की जाँच

nationaloptical971@gmail.com

2, सेवाश्रम चौराहा, उदयपुर 313 001

फतह सिंह भटवाड़ा
9829081971

घनश्याम सिंह काकरवा
B.OPTOM
9950307331

नोबल्स ऑप्टिकल
आई केयर सेन्टर

कम्प्यूटर द्वारा आँखों की जाँच

11, ओस्तवाल प्लाजा-I, सुन्दरवास,
उदयपुर (राज.)

Fateh Singh Chundawat
(Property Dealer)
9829081971, 928046575

NOBLES PROPERTIES
& DEVELOPERS

fschundawat@gmail.com

31, Ostwal Nagar Opp. Rajasthan patrika
Sunderwas, Udaipur 313002

अपने तप की ले मशाल,
मैं ज्योति जगाता आता हूँ
हारे अर्जुन को कर्मयोग का
पाठ पढ़ाने आया हूँ

-: हार्दिक शुभकामनाओं सहित :-

कल्याणसिंह विजयमगरी

कर्णावती विद्या मंदिर,
बी-ब्लाक, सेक्टर-14, उदयपुर
मो. 9352522466

VIRENDRA SINGH TALAWDA
Contractor
(M) 94143-96530

है एक साध्य हमारा,
एक ध्वजा है भैया,
एक ही रंग रंगे हैं,
एक ही है खेवैया,
मन एक हों, हम एक हों,
हम सबके सपने एक हों।

SUMECO
Group of Companies

Dalveersingh H. Chouhan
Chairman & Managing Director
Mob. 9823046704

SUMECO
• CNC Fabrication • Powder Coating • Anodising

Head Office : W- 231 'S' Block, E, MIDC, Bhosari, Pune 26
Email sumecogroup@gmail.com
Website : www.sumecogroup.com
Ph.:27130023 / 24 / 25 /26

Durga Metal Arts
Anodising, Hard Anodising, Chromodising

J-401, J-Block MIDC,Bhosari,Pune 411026
Email- Sales @durgametalarts.in
Website - www.durgametalarts.in
Ph.:- 020 27130011

"over the decade we have established quality of our anodising & Powder cating.
Now with our new veuture we are proud to offer solution in sheet metal fabrication"

All Group of Unit

Durga Metal Arts | Sumeco Metal Powder coating | Sumeco Metal Pressing Pvt. Ltd | Alukon Fabricators Pvt. Ltd.

Devisingh Rajput (Rajawat)
+91 9371031339

SHIVAM MARBLE & GRANITE
Dealer : All kind of Marble, Granite, Italiyan Marble & Tiles
S. No. 10/2/1, Tukaram Nagar, Ganpati Hsg. Soc., Behind M.L.A. Bapu Saheb Pathare Banglow, Opp. Reliance Mart, Kharadi, Pune-14
Email : shivammarble.granite@gmail.com

FLOORING MASTER
Email : flooringmasterpune@gmail.com

Devising Rajput & Company
(All Kind of Civil Contractor)
Add. : House No. 337, Sr. No. 48/3, Ganesh Nagar, Wadgaon Sheri, Pune 411 014
Ph. : 9371031339
Email : devisinghrajput1002@gmail.com
rajput_devisingh@rediffmail.com

M/s. D.S. Motors
Near Masalpur Chungi, Hindaun Road, Karauli 322241
Mob. : 8875787111, 8875787444
Email : dsmotors.karauli@gmail.com

सितम्बर, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 09

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह